# अथ अनेकार्थनामवर्गः

**वक्तव्य**—प्रस्तुत अनेकार्थ वर्ग के पर्यायों को मूलनिघंटु भाग में आये पर्यायों के साथ मिलाकर अध्ययन करने से अनेक परिवर्तन देखे गये, इसलिये पादटिप्पणी में इनका स्पष्टीकरण किया गया है। कुछ पर्याय इनमें ऐसे हैं जो ठीक होते हुवे भी मूल भावप्रकाश निघंटु में नहीं हैं किन्तु अन्य निघंटुओं में हैं। कुछ पर्याय, मूल पर्यायों से कुछ ही भिन्न हैं जैसे किसी में केवल लिंगभेद है या किसी में केवल विशेषण का अन्तर है। कुछ ऐसे भी पर्याय हैं जिनका उल्लेख कहीं नहीं मिलता। इसी प्रकार संभव है कि कुछ पर्याय अनेकार्थवाची होते हुये भी यहाँ उनका उल्लेख न हुआ हो। परिशिष्ट में दी हुई संपूर्ण पर्यायों की सूची से इनका ज्ञान हो सकता है।

## तत्र द्व्यर्थानि नामान्याह

### दो अर्थ वाले शब्द

**अश्मन्तकः**—अम्ललोणिका कोविदारश्च।
१ अश्मन्तक—तिनपतिया और कचनार।
**कठिल्लकः**—कारवेल्लः, रक्तपुनर्नवा च।
२ कठिल्लक—करैला और लाल पुनर्नवा।
**कुलकः**—पटोलः, कुपीलुश्च ( कुपीलुः 'कुचिला' इति लोके प्रसिद्धः )।
३ कुलक—परवर और कुचिला।
**कोशातकी**—महाकोशातकी, राजकोशातकी च।
४ कोशातकी—नेनुआ और तरोई।
**दीप्यकः**—यवानी, अजमोदा च।
५ दीप्यक—अजवाइन और अजमोद।
**मरुबकः**—फणिज्जकः, पिण्डीतकश्च, ( फणिज्जकः='मरुआ' इति लोके, पिण्डीतकः='मैनफल' इति लोके )।
६ मरुबक—मरुआ और मैनफल।
**मधूलिका**—मूर्वा, जलयष्टी च।
७ मधूलिका—मूर्वा और जलमुलेठी।
**रुचकम्**—सौवर्चलं, बीजपूरकञ्च।
८ रुचक—सोंचरनमक और बिजौरा नींबू।
**लोणिका**—लोणीशाकं, चाङ्गेरीशाकञ्च।
९ लोणिका—नोनीशाक और चांगेरीशाक ( तिनपतिया )।
**वसुकः**—रक्तार्कः,[1] क्षारलवणं च।[2]
१० वसुक—लाल आक और रेहगवा नोन।
**बाह्लीकम्**—कुङ्कुमं, हिङ्गु च।
११ बाह्लीक—केशर और हींग।
**वितुन्नकम्**—धान्यकं, तुत्थञ्च।
१२ वितुन्नक—धनियाँ और नीला थोथा।
**स्वादुकण्टकः**—गोक्षुरः, विकङ्कतश्च।
१३ स्वादुकण्टक—गोखरू और कंटाई।
**अग्निमुखी**—भल्लातकी, लाङ्गली च।
१४ अग्निमुखी—भिलावा और कलिहारी।
**अग्निशिखम्**—कुङ्कुमं, कुसुम्भञ्च।
१५ अग्निशिखा—केसर और कुसुम ( बरें )।
**अजशृङ्गी**—मेषशृङ्गी, कर्कटशृङ्गी च।
१६ अजशृङ्गी—मेंढाशिङ्गी और काकडासिङ्गी।

१. वसुक पर्याय श्वेतार्क ( मन्दार ) का होने से यहाँ रक्तार्क के स्थान पर श्वेतार्क होना चाहिये।
२. क्षारलवण के लिये वसुक पर्याय मूल में नहीं है। ध. नि. ने. वसुक पर्याय 'उद्भिदलवण' के लिये दिया है।



**प्रियङ्गु**—फलिनी, कङ्गुश्च।
१७ प्रियङ्गु—फूलप्रियङ्गु और कंगुनी।
**भृङ्गः**—भृङ्गराजः, त्वक् च।
१८ भृङ्ग—भांगरा और तज।
**समङ्गा**—मञ्जिष्ठा, लज्जालुश्च।
१९ समङ्गा—मंजीठ और लजालू।
**अमोघा**—विडङ्गं, पाटला च।
२० अमोघा—वायविडंग और पाढल।
**मोचा**—कदली, शाल्मलिश्च।
२१ मोचा—केला और सेमर।
**कुटन्नटः**—श्योनाकः, कैवर्तीमुस्तञ्च।
२२ कुटन्नट—सोनापाठा और केवटी मोथा।
**कुनटी**—धनिका, मनःशिला च।
२३ कुनटी—धनियाँ और मैनसिल।
**घोण्टा**—पूगः, बदरी च।
२४ घोण्टा—सुपारी और बेर।
**त्रिपुटा**—त्रिवृत्, सूक्ष्मैला च।
२५ त्रिपुटा—निशोथ और छोटी इलायची।
**शटी**—कर्चूरः, गन्धपलाशी च।
२६ शटी—कचूर और गन्धपलाशी ( कपूर-कचरी )।
**दन्तशठः**—जम्बीरः, कपित्थश्च।
२७ दन्तशठ—जम्भीरी नीबू और कैथा।
**दन्तशठा**—अम्लिका, चाङ्गेरी च।
२८ दन्तशठा—इमली और तिनपतिया।
**अरुणम्**[1]—मञ्जिष्ठा, अतिविषा च।
२९ अरुणा—मजीठ और अतीस।
**कणा**—पिप्पली, जीरकञ्च।
३० कणा—पीपल और जीरा।
**तालपर्णी**[2]—मुशली, मुरा च।
३१ तालपर्णी—मूसली और मुरा (एकाङ्गी)।
**पीलुपर्णी**—मूर्वा, बिम्बी च।
३२ पीलुपर्णी—मूर्वा और कन्दूरी।
**ब्राह्मणी**—भार्ङ्गी, स्पृक्का च।
३३ ब्राह्मणी—भारङ्गी और स्पृक्का।
**अपराजिता**[3]—विष्णुक्रान्ता, शालिपर्णी च
३४ अपराजिता—कोयल और शालिपर्णी।
**आस्फोता**—अपराजिता, सारिवा च।
३५ आस्फोता—अपराजिता ( कोयल ) और श्वेत सारिवा ( अनन्तमूल )।
**पारावतपदी**—ज्योतिष्मती, काकजङ्घा च।
३६ पारावतपदी—मालकांगुनी और काकजङ्घा।
**शारदी**[4]—शारिवा, जलपिप्पली च।
३७ शारदी—अनन्तमूल और जलपीपल।
**उग्रगन्धा**—वचा, यवानी च।
३८ उग्रगन्धा—घोडवच और अजवाइन।
**परिव्याधः**—कर्णिकारः, जलवेतसश्च।
३९ परिव्याध—कर्णिकार और जलवेतस।
**अञ्जनम्**—स्रोतोञ्जनम्, सौवीरञ्च।
४० अञ्जन—काला सुरमा और सफेद सुरमा।
**अग्निः**—चित्रकः, भल्लातश्च।
४१ अग्नि—चीता और भिलावा।
**कृमिघ्नः**—विडङ्गः, हरिद्रा च।
४२ कृमिघ्न—वायविडङ्ग और हरदी।
**तेजनः**—शरः, वेणुश्च।
४३ तेजन—सरपत और बांस।
**तेजनी**—तेजस्वती, मूर्वा च।
४४ तेजनी—तेजवल और मूर्वा।
**रोचनः**—कम्पिल्लः, रोचना च।
४५ रोचन—कबीला और गोलोचन।

१. मञ्जिष्ठा एवं अतिविषा का पर्याय अरुणा आया हुआ है न कि अरुणम्।
२. तालपर्णी यह न मुशली का पर्याय है न मुरा का। अन्य निघण्टुओं में यह मिश्रेया का पर्याय दिया हुआ है। मुशली का पर्याय तालमूली मिलता है एवं मुरा का शालपर्णिका मिलता है।
३. 'अपराजिता' यह नाम शालिपर्णी ( पाठा०–शालपर्णी ) के पर्यायों में नहीं आया है।
४. 'शारदी' यह 'सारिवा' के पर्यायों में नहीं है।

[ रोचना—गोरोचना, रक्तकह्लारश्च[1] ]।
४६ रोचना—गोलोचन और लाल कुमुद।
राजादनम्—क्षीरिका, प्रियालश्च।
४७ राजादन—खिरनी और चिरौंजी।
शकुलादनी—कटुका, जलपिप्पली च।
४८ शकुलादनी—कुटकी और जलपीपल।
गोलोमी—श्वेतदूर्वा, वचा च।
४९ गोलोमी—सफेद दूब और घोडवच।
पद्मा—पद्मचारिणी, भार्ङ्गी च।
५० पद्मा—स्थलकमल और भारङ्गी।
श्यामा—सारिवा, प्रियङ्गुश्च।
५१ श्यामा—अनन्तमूल और प्रियङ्गु।
उत्तमा—त्रिफला, सर्वतोभद्रा च।
५२ उत्तमा—त्रिफला और गम्भारी।
धान्यम्—धान्याकं, शाल्यादि च।
५३ धान्य—धनिया और शालि ( जड़हन ) आदि धान्य।
सहस्रवीर्या—नीलदूर्वा, महाशतावरी च।
५४ सहस्रवीर्या—हरी दूब और बड़ी शतावर।
सेव्यम्—उशीरं, लामज्जकञ्च।
५५ सेव्य—खस और लामज्जक।
उदुम्बरः—जन्तुफलं, ताम्रञ्च।
५६ उदुम्बर—गूलर और तांबा।
ऐन्द्री—इन्द्रवारुणी, इन्द्राणी[2] च।
५७ ऐन्द्री—इन्द्रायन, निर्गुण्डी और बड़ी इलायची।
कटम्भरा—कटुका, श्योनाकश्च।
५८ कटम्भरा—कुटकी और सोनापाठा।
क्षारः—यवक्षारः स्वर्जिका च।
५९ क्षारः—जवाखार और सज्जीखार।

गण्डीरः—गण्डारी, मञ्जिष्ठा च [गण्डारी शाकविशेषो 'गण्डाली' इति लोके]।
६० गण्डीर—गण्डारी शाक ( इसे लोक में 'गण्डाली' भी कहते हैं ) और मंजीठ।
गान्धारी—दुरालभा गन्धपलाशी च।
६१ गान्धारी—धमासा और गन्धपलाशी[3] ( कपूरकचरी )।
चित्रा—इन्द्रवारुणी, बृहद्दन्ती च।
६२ चित्रा—इन्द्रायन और बड़ी दन्ती।
तुण्डीकेरी—कार्पासी, बिम्बी च।
६३ तुण्डीकेरी—कपास और कन्दूरी।
धीरा—गुडूची, क्षीरकाकोली च।
६४ धीरा—गिलोय और क्षीरकाकोली।
बालपत्रः—खदिरः, यवासश्च[4]।
६५ बालपत्र—खैर और जवासा।
वारि—बालकम्, उदकञ्च।
६६ वारि—सुगन्धबाला और जल।
अङ्गारवल्ली—भार्ङ्गी गुञ्जा च।
६७ अङ्गारवल्ली—भारङ्गी और गुंजा (घुंघची)।
अमृणालम्—लामज्जकम्, उशीरञ्च।
६८ अमृणाल—लामज्जक और खस।
कुण्डली—गुडूची, कोविदारश्च।
६९ कुण्डली—गिलोय और कचनार।
गन्धफली—प्रियङ्गुः, चम्पककलिका च।
७० गन्धफली—प्रियङ्गु और चम्पेकी कली।
दीर्घमूलः[5]—यवासः, शालिपर्णी च।
७१ दीर्घमूल—जवासा और सरिवन।
पिच्छिला—शाल्मली शिंशपा च।
७२ पिच्छिला—सेमर और सीसम।
पुष्पफलः—कपित्थः, कूष्माण्डश्च।
७३ पुष्पफल—कैथा और पेठा।

१. कल्हार के पर्यायों में रोचना नहीं है।
२. भा. प्र. में इन्द्राणी के निर्गुण्डी तथा बृहदेला पर्याय नहीं हैं किन्तु रा. नि. ने दिये हैं।
३. कपूरकचरी का गन्धारिका पर्याय भा. प्र. में है, गान्धारी नहीं है।
४. भा. प्र. में यवासा का बालपत्र पर्याय नहीं है किन्तु रा. नि. एवं ध. नि. में है।
५. यवासा और शालपर्णी का दीर्घमूलः पर्याय भा. प्र. में नहीं है किन्तु रा. नि. एवं ध. नि. में यवासा के लिये दीर्घमूलः एवं शालिपर्णी के लिये दीर्घमूला पर्याय मिलते हैं।



पोटगलः—नलः, काशश्च।
७४ पोटगल—नरसल और कास।
यवफलः—कुटजः, वंशश्च।
७५ यवफल—कुड़ा और बांस।
देवी—मूर्वा, स्पृक्का च।
७६ देवी—मूर्वा और स्पृक्का।
विश्वा—शुण्ठी, अतिविषा च।
७७ विश्वा—सोंठ और अतीस।
शीतशिवम्—सैन्धवं, मिश्रेया[1] च।
७८ शीतशिव—सेन्धा नमक और मिश्रेया।
कर्कशः—काम्पिल्यः, कासमर्दश्च।
७९ कर्कश—कबीला और कसौंदी।
चर्मकषा—सातला, मांसरोहिणी च।
८० चर्मकषा—सातला और मांसरोहिणी।
नन्दिवृक्षः—अश्वत्थभेदः ( अधोमुखपत्रशाखी 'बेलिया पीपर' इति लोके), तूणिश्च।
८१ नन्दिवृक्ष—पीपलभेद ( अधोमुख पत्ते तथा शाखाओं वाला 'बेलिया पीपर' इस नाम से लोकप्रसिद्ध वृक्ष ) और तून।
पयः—क्षीरम्, उदकञ्च।
८२ पयः—दूध और जल।
रुहा—दूर्वा, मांसरोहिणी[2] च।
८३ रुहा—दूब और मांसरोहिणी।
सिंही—बृहती, वासा च।
८४ सिंही—बड़ी कटेरी और अडूसा।
कतकम्—विडलवणम्,[3] निर्मलीफलं च।
८५ कतक—बिरिया सञ्चर नोन और निर्मली का फल।
कण्टकाढ्या—कुब्जकः, शाल्मली च।
८६ कण्टकाढ्या—कूजा और सेमर।
यक्षधूपः—सरलनिर्यासः,[4] राळश्च।
८७ यक्षधूप—गन्धाबिरोजा और राल।
द्राविडी—शटी, सूक्ष्मैला च।
८८ द्राविडी—कचूर और छोटी इलायची।
हट्टविलासिनी—हरिद्रा, नखी च।
८९ हट्टविलासिनी—हरदी और नखी।
तिलपर्णम्[5]—रक्तचन्दनम्, ग्रन्थिपर्णं च।
२० तिलपर्ण—लालचन्दन और गठिवन।
मधुरः—जीवकः जीवनीयगणश्च।
९१ मधुर—जीवक और जीवनीय गण।
लोहद्राविणी[6]—गण्डदूर्वा अम्लवेतसश्च।
९२ लोहद्राविणी—गांडरदूब और अमलवेत।
नागिनी—ताम्बूली, नागपुष्पी च।
९३ नागिनी—पान और नागपुष्पी।
मृदुरेचनी—त्रिवृत्[7], मार्कण्डिका च।
९४ मृदुरेचनी—निसोत और सनाय।
वटः—श्योनाकः, अशोकश्च।
९५ वट—सोनापाठा और अशोक।
वनस्पतिः—वटः, नन्दिवृक्षश्च।
९६ वनस्पति—बरगद और बेलियापीपर।
मन्दारः—श्वेतार्कः, महानिम्बश्च।[8]
९७ मन्दार—सफेद आक और बकायन।

१. मिश्रेया के लिये शीतशीव पर्याय भा. प्र. में नहीं है किन्तु ध. नि. एवं रा. नि. में है।
२. मांसरोहिणी का पर्याय अतिरुहा आया है नकि केवल रुहा। ध. नि. में रुहा है।
३. विड़लवण का पर्याय कृतक है नकि कतक।
४. भा. प्र. में सरलनिर्यास के लिये वृक्षधूप आया है नकि यक्षधूप।
५. मूल में तैलपर्णकम् यह ग्रन्थिपर्ण के लिये पर्याय आया है।
६. गण्डदूर्वा का पर्याय लोहद्राविणी आया है एवं अम्लवेतस के लिये यह पर्याय नहीं है।
७. त्रिवृत का रेचनी पर्याय आया है नकि मृदुरेचनी।
८. महानिम्ब के लिये मन्दार पर्याय नहीं है। भा. प्र. में पारिभद्र के पर्याय में मन्दार लिखा है।

**अम्बुजः**—कमलम्[1], इज्जलश्च ।
९८ अम्बुज—कमल और इज्जल (समुद्रफल) ।
**कबरी**—बर्बरी[2], हिङ्गुपत्री च ।
९९ कबरी—बर्बरी (वनतुलसी और हींगपत्री।
**कुमारी**—घृतकुमारिका, शतपत्री[3] च ।
१०० कुमारी—घीकुवार और गुलाब ।
**वरतिक्तकः**—पाठा, पर्पटश्च ।
१०१ वरतिक्तक—पाढ़ी और पित्तपापड़ा।
**चित्रकः**—एरण्डः,[4] अनलनामा च ।
१०२ चित्रक—एरण्ड और चिता ।
**यज्ञियः**—खदिरः, पलाशश्च ।
१०३ यज्ञिय—खैर और पलाश ।
**रक्तबीजः**—अरिष्टकः, कन्दुरी[5] च ।
१०४ रक्तबीज—रीठा और कन्दुरी ।
**क्षारश्रेष्ठः**—पलाशः, मोक्षकश्च ।
१०५ क्षारश्रेष्ठ—पलाश और मोखा ।
**श्वेतपुष्पः**—श्वेतार्कः, इन्द्रवारुणी च ।
१०६ श्वेतपुष्प—सफेद आक और इन्द्रायण
**तुवरी**—सौराष्ट्री, आढकी च ।
१०७ तुवरी—सोरठी माटी और अरहर ।
**कुम्भिका**—कट्फलः, वारिपर्णी च ।
१०८ कुम्भिका—कायफल और जलकुम्भी ।
**राजपुत्रिका**—रेणुका, जाती च ।
१०९ राजपुत्रिका—रेणुका और जाई (चमेली)।
**रक्तपुष्पः**—रक्तार्कः, कन्दुरी[5] च ।
११० रक्तपुष्प—लाल आक और कन्दुरी ।
**सप्तला**—शातला, वासन्ती च ।
१११ सप्तला—शातला और नेवारी ।
**विषमुष्टिकः**—महानिम्बः विषतिन्दुकश्च ।[6]
११२ विषमुष्टिक—बकायन और कुचला ।
**रक्तफला**—स्वर्णवल्ली, वटश्च ।
११३ रक्तफला—सोनवेल और बरगद ।
**चन्द्रहासा**—गुडूची, लक्ष्मणा[7] च ।
११४ चन्द्रहासा—गिलोय और लक्ष्मणा ।

इति द्व्यर्थानि नामानि ।

## अथ त्र्यर्थानि नामान्याह

### तीन अर्थ वाले शब्द

**क्रमुकः**—पूगः, तूदः, पट्टिकालोध्रश्च ।
१ क्रमुक—सुपारी, सहतूत और पठानी लोध ।
**क्षुरकः**—कोकिलाक्षः, गोक्षुरः, तिलकनामपुष्पविशेषश्च ।
२ क्षुरक—तालमखाना, गोखरू और तिलकनामक पुष्पविशेष ।
**प्रियकः**—प्रियङ्गुः,[8] कदम्बः, असनश्च ।
३ प्रियक—प्रियङ्गु, कदम और असना ।
**पृथ्वीका**—कालाजाजी, बृहदेला, हिङ्गुपत्री च ।

१. कमल के लिये अंबुज पर्याय अन्य निघंटुओं में है ।
२. बर्बरी के पर्याय में कबरी नहीं मिलता ।
३. शतपत्री का पर्याय महाकुमारी आया है नकि कुमारी ।
४. एरण्ड का पर्याय चित्रः दिया हुआ है ।
५. कन्दुरी नाम सन्दिग्ध है । रक्तबीज यह अनार का पर्याय अन्य निघण्टु में है । अनार का रक्तपुष्प पर्याय अन्य निघण्टुओं में मिलता है ।
६. विषमुष्टिक पर्याय कुचला के लिये भा. प्र. में नहीं है ।
७. लक्ष्मणा के लिये चन्द्रहासा पर्याय भा. प्र., रा. नि., ध. नि. में नहीं है ।
८. प्रियंगु का पर्याय प्रियक नहीं मिलता ।



४ पृथ्वीका—कलौंजी, बड़ी इलायची और हिंगुपत्री ।
**भूतीकम्**—भूनिम्बं, कत्तृणं,[1] भूस्तृणञ्च ।
५ भूतीक—चिरायता, रोहिष और भूतृण ।
**सोमवल्कः**—कट्फलः, श्वेतखदिरः, घृतपूर्णकरञ्जश्च ।
६ सोमवल्क—कायफर, सफेदखैर और घियाकरञ्ज ।
**सौगन्धिकम्**—कह्लारं,[2] कतृणं, गन्धकञ्च ।
७ सौगन्धिक—कल्हार ( लाल कुमुद), रोहिस और गन्धक ।
**भृङ्गः**—भृङ्गराजः, त्वग्, भ्रमरश्च ।
८ भृङ्ग—भांगरा, तज और भौरा ।
**अरिष्टः**—निम्बः, रसोनं, मद्यञ्च ।
९ अरिष्ट—नीम, लहसुन और मद्य ।
**मर्कटी**—कपिकच्छुः, अपामार्गः, करञ्जी च ।
१० मर्कटी—केवांच, चिचिढ़ा और करञ्जी ।
**अम्बष्ठा**—पाठा, चाङ्गेरी, माचिका च ।
११ अम्बष्ठा—पाढ़ी, चांगेरी और माचिका )
**कृष्णा**—पिप्पली, कालाजाजी, नीली[3] च
१२ कृष्णा—पीपर, कलौंजी और नील ।
**क्षीरिणी**—दुग्धिका[4] क्षीरकाकोली, श्वेतसारिवा[5] च ।
१३ क्षीरिणी—दुद्धी, क्षीरकाकोली और सफेद सारिवा ( अनन्तमूल ) ।
**मधुपर्णी**—गुडूची, गम्भारी, नीली च ।
१४ मधुपर्णी—गिलोय, गम्भारि और नील ।
**मण्डूकपर्णः**—श्योनाकः, स स्त्रियां तु मञ्जिष्ठा, ब्रह्ममाण्डूकी च ।
१५ मण्डूकपर्ण—सोनापाठा, स्त्रीलिङ्ग मण्डूकपर्णी—मजीठ और ब्रह्ममांडूकी ।
**श्रीपर्णी**—गम्भारी, गणिकारिका, कट्फलं च ।
१६ श्रीपर्णी—गम्भारि, अरनी और कायफर ।
**अमृता**—गुडूची, हरीतकी, धात्री च ।
१७ अमृता—गिलोय, हर्रा और आंवला ।
**अनन्ता**—दुरालभा, नीलदूर्वा, लाङ्गली च
१८ अनन्ता—धमासा, हरी दूब और कलिहारी ।
**ऋष्यप्रोक्ता**—अतिबला, महाशतावरी, कपिकच्छुश्च ।
१९ ऋष्यप्रोक्ता—ककही, बड़ी शतावर और केवांच ।
**कृष्णवृन्ता**—पाटला, गम्भारी, माषपर्णी च ।
२० कृष्णवृन्ता—पाढ़ल, गम्भारि और माषपर्णी ।
**जीवन्ती**—गुडूची, शाकविशेषः, वन्दा[6] च
२१ जीवन्ती—गिलोय, जीवन्ती शाकविशेष और बन्दा ।
**लता**—सारिवा, प्रियङ्गुः, ज्योतिष्मती च ।
२२ लता—अनन्तमूल (सारिवा), प्रियङ्गु और मालकांगुनी ।
**समुद्रान्ता**—दुरालभा, कार्पासी, स्पृक्का च
२३ समुद्रान्ता—धमासा, कपास और स्पृक्का ।
**हैमवती**—हरीतकी, श्वेतवचा, पीतदुग्धः सेहुण्डश्च[7] ( यस्य मूलं 'चोक' इति प्रसिद्धम् ) ।

१. भूनिम्ब का पर्याय भूतीक नहीं दिखलाई देता ।
२. कल्हार का सौगन्धिक पर्याय भा. प्र. में नहीं है ।
३. रा. नि. में नीली का कृष्णा पर्याय है ।
४. क्षीरा तथा विक्षीरिणी ये पर्याय दुग्धिका के दिये हुये हैं ।
५. श्वेतसारिवा के लिये क्षीरिणी पर्याय नहीं है ।
६. वन्दा का पर्याय जीवन्ती नहीं है यद्यपि जीवन्तीभेद, स्वर्ण जीवन्ती एक प्रकार का बांदा ही होता है ।
७. वास्तव में यह सेहुण्ड भेद नहीं है ।

२४ हैमवती—हर्रा, सफेद वच और पीले दूध का सेहुंड, मद्‌माद् ( इसके मूल को लोक में 'चोक' कहते हैं )।

अव्यथा—हरीतकी, महाश्रावणी, पद्मचारिणी च।

२५ अव्यथा-हर्रा, बड़ी मुण्डी और स्थलकमल।

बहुग्रन्था—गन्धपलाशी, वचा, करञ्जा च।

२६ बहुग्रन्था—कपूरकचरी, वच और करञ्ज।

वरदा—सुवर्चला ('हुरहुर' इति लोके), अश्वगन्धा, वाराही ( 'गेठी'ति लोके )।

२७ वरदा—हुरहुर, असगन्ध और वाराहीकंद ( 'गेंठी' नाम से लोकप्रसिद्ध )।

इक्षुगन्धा—काशः, कोकिलाक्षः, क्षीरविदारी ( गोक्षुरः ) च।

२८ इक्षुगन्धा—कास, तालमखाना और विदारी। (और इक्षुगन्धिका-गोखरू भी है)।

कालस्कन्धः—तमालः तिन्दुकं कालखदिरश्च।[1]

२९ कालस्कन्ध—तमाल, तेन्दू और दुर्गन्धखैर।

महौषधम्—शुण्ठी, रसोनः, विषञ्च।[2]

३० महौषध-सोंठ,लहसुन और विष (वत्सनाभ)।

मधु—क्षौद्रं, पुष्परसः, मद्यञ्च।

३१ मधु—शहद, फूल का रस और मद्य।

कपीतनः-आम्रातकः,शिरीषः,गर्दभाण्डश्च।

३२ कपीतन-अम्बाडा, सिरस और पारस पीपल।

मदनः—पिण्डीतकः, धत्तूरः, सिक्थकञ्च।

३३ मदन—मैनफल, धतूर और मोम।

शतपर्वा—वंशः, दूर्वा, वचा च।

३४ शतपर्वा—बांस, दूब और वच।

सहस्रवेधी[3]-अम्लवेतसः,मृगमदः, हिङ्गु च

३५ सहस्रवेधी—अमलबेत, कस्तूरी और हींग।

ताम्रपुष्पी—धातकी, पाटला, श्यामा त्रिवृच्च।[4]

३६ ताम्रपुष्पी—धायका फूल, पाढ़लभेद और काली निशोथ।

सदापुष्पः—श्वेतार्कः, रक्तार्कः,[5]कुन्दश्च।

३७ सदापुष्प—सफेद आक, लाल आक और कुन्द।

सुरभिः—शल्लकी, मुरा, एलवालुकं[6] च।

३८ सुरभि—सालई, मुरा और एलवालुक।

लक्ष्मीः—ऋद्धिः, वृद्धिः, शमी च।

३९ लक्ष्मी—ऋद्धि, वृद्धि और शमी।

कालानुसार्यम्—कालीयकं,तगरं, शैलेयञ्च।

४० कालानुसार्य—पीला चन्दन ( कलम्बक ), तगर और भूरिछरीला।

चाम्पेयः—चम्पकः नागकेसरः,पद्मकेसरञ्च[7]।

४१ चाम्पेय-चंपा,नागकेसर और कमलका केसर।

नादेयी—गणिकारिका, जलजम्बूः, जलवेतसश्च।

४२ नादेयी-अग्निमंथ, जलजामुन और जलबेंतस।

पाक्यम्—विडम्, सौवर्चलम्[8],यवक्षारश्च।

१. कालखदिर पर्याय भा. प्र. ने नहीं दिया है। हरिमेद ( विट्‌खदिर ) का पर्याय कालस्कन्ध दिया हुआ है।

२. ध. नि. में विष का पर्याय महौषध दिया है।

३. भा. प्र. में अम्लवेतस् के पर्याय शतवेधी एवं सहस्रनुत हैं एवं कस्तूरी का पर्याय सहस्रभित् है।

४. रा. नि. ने श्यामाविशेष का ताम्रपुष्पिका पर्याय दिया है।

५. रक्तार्क के लिये सदापुष्प पर्याय नहीं दिया हुआ है।

६. भा. प्र. में एलवालुक का सुगन्धि पर्याय दिया है न कि सुरभिः।

७. रा. नि. ने पद्मकेसर का पर्याय चाम्पेयकं दिया है।

८. सौवर्चल का पर्याय मन्थपाकं आया है न कि पाक्यम्।



४३ पाक्य—विरिया संचर नमक, काकानोन और जवाखार।

विशल्या—लाङ्गली,गुडूची लघुदन्ती च।

४४ विशल्या—कलिहारी,गिलोय और छोटीदंती

इन्द्रद्रुः—ककुभः, देवदारुः,[1] कुटजश्च।

४५ इन्द्रद्रु—अर्जुन, देवदार और कुडा।

काश्मीरं काश्मीरी च—कुङ्कुमम्, पुष्करमूलम्, गम्भारी च।

४६ काश्मीर और काश्मीरी—केशर, पुष्करमूल और गम्भारि।

गुन्द्रः[2]—एरकः, मुञ्जः शरश्च।

४७ गुन्द्र—गोंदपटेर, मूंज और सरपत।

गुन्द्रा—प्रियङ्गुः, गवेधुका,[3] भद्रमुस्तकञ्च

४८ गुन्द्रा—प्रियङ्गु, गर हेडुआ और नागरमोथा।

चुक्रम्-शुक्तम्, अम्लवेतसम्, वृक्षाम्लञ्च।

४९ चुक्र—चूक, अमलबेंत और कोंकम।

पारिभद्रः-निम्बः, पारिजातः, देवदारुश्च।[4]

५० पारिभद्र—नीम, फरहद और देवदारु।

पीतदारुः—हरिद्रा,[5]देवदारुः[6] सरलश्च।[7]

५१ पीतदारु—हरदी, देवदार और धूपसरल।

वीरः—ककुभः, वीरणं, काकोली च।

५२ वीर—कोह, वीरण तृण और काकोली।

वीरतरुः—ककुभः,[8] वीरणम्, शरश्च।[9]

५३ वीरतरु—कोह, वीरण तृण और सरपत।

मयूरः—अपामार्गः, अजमोदा, तुत्थञ्च।

५४ मयूर—चिचिड़ा, अजमोद और तूतिया।

रक्तसारः—रक्तचन्दनं, पतङ्गः, खदिरश्च।

५५ रक्तसार—लालचन्दन, पतङ्ग और खैर।

बदरा[10]—सुवर्चला, अश्वगन्धा, वाराही च।

५६ बदरा—हुरहुर, असगंध और वाराहीकंद।

वशिरः—रक्तापामार्गः, गजपिप्पली, समुद्रलवणञ्च।

५७ वशिर-लाल अपामार्ग, गजपीपर और समुद्री नोन।

सौवीरम्-अञ्जनभेदः, बदरम्, सन्धानभेदश्च।

५८ सौवीर-सफेद सुरमा, बेर, कांजी का भेद।

वञ्जुलः—अशोकः, वेतसः, तिनिशश्च।

५९ वञ्जुल—अशोक, वेतस और तिनिस।

शिला—मनःशिला,शिलाजतु,[11]गैरिकञ्च।[12]

६० शिला—मैनसिल, शिलाजीत और गेरू।

सोमवल्ली—वाकुची, गुडूची, ब्राह्मी च।

६१ सोमवल्ली—बाकुची, गिलोय और ब्राह्मी।

अक्षीवः—शोभाञ्जनः, महानिम्बः,[13] समुद्रलवणञ्च।

१. देवदारुः का पर्याय भा. प्र. ने इन्द्रदारु लिखा है।

२. मुंज एवं शर के लिये गुन्द्रः पर्याय नहीं दिखलाई देता।

३. गवेधुका का गुन्द्रा पर्याय नहीं मिलता किन्तु एरका का पर्याय गुन्द्रा है।

४. देवदारु का पर्याय पारिभद्र नहीं मिलता।

५. हरिद्रा का पर्याय पीतदारु नहीं है किन्तु दारुहरिद्रा का है।

६. देवदारु का पर्याय पीतदारु नहीं है।

७. सरल का पर्याय पीतवृक्ष दिया हुआ है।

८. ककुभ का पर्याय वीरवृक्ष है। वीरतरु अन्य वृक्ष है।

९. शर का पर्याय वीरतरु नहीं मिलता।

१०. बदरा के स्थान पर वरदा अधिक उचित है क्योंकि अश्वगन्धा तथा वाराही का पर्याय वरदा है।

११. शिलाजतु का पर्याय शिलाजं है।

१२. गैरिक के पर्याय गैरेयं, गिरिजं हैं न कि शिला।

१३. महानिम्ब का अक्षीर पर्याय अन्य निघण्टुओं में मिलता है, अक्षीव नहीं।

६२ अक्षीव–सहिजन, बकायन और समुद्री नोन ।

कारवी–कालाजाजी, शताह्वा, अजमोदा च।

६३ कारवी—कलौंजी, सोवा और अजमोदा ।

धामार्गवः—रक्तापामार्गः, राजकोशातकी, महाकोशातकी च ।

६४ धामार्गव–लाल अपामार्ग, तरोई और नेनुआ।

दुःस्पर्शः–यवासः, कपिकच्छूः, कण्टकारी च ।

६५ दुःस्पर्श—जवासा, कौंच और भटकटैया ।

पलाशः—किंशुकः, गन्धपलाशी,[1] पत्रञ्च[2]।

६६ पलाश—पलाश, कपूरकचरी और तेजपात।

कालमेषी–मञ्जिष्ठा, वाकुची, श्यामा त्रिवृच्च ।

६७ कालमेषी–मजीठ, बकुची और काली निसोथ।

पलङ्कषा—गुग्गुलुः, गोक्षुरः, लाक्षा च ।

६८ पलङ्कषा—गूगल, गोखरू और लाख ।

मधुरसा—द्राक्षा, मूर्वा, गम्भारी च ।

६९ मधुरसा—दाख, मूर्वा और गंभारि ।

रसा—रास्ना, शल्लकी, पाठा च ।

७० रसा—रास्ना, सलई और पाढ़ी ।

श्रेयसी—हरीतकी,रास्ना, गजपिप्पली च

७१ श्रेयसी—हर्रा, रास्ना और गजपीपल ।

लोहम्—अयः, कांस्यम्[3], अगुरु च ।

७२ लोह—लोहा, कांसा और अगर ।

सहा–मुद्गपर्णी, बलाभेदः ('ककही' इति लोके ), शतपत्री[4] ('सेवती गुलाब' इति लोके ) ।

७३ सहा—मुगंवन, बरियारा का भेद ( लोक प्रसिद्ध 'ककही' ) और सेवती गुलाब ।

सुवहा–रास्ना, नाकुली,[5] नीलपुष्पः सिन्दुवारश्च ।

७४ सुवहा—रास्ना, नाकुली और नीले फूलकी मेउड़ी ।

कठिल्लकः—कारवेल्लः, रक्तपुनर्नवा, कृष्णबर्बरी च ।

७५ कठिल्लक—करेला, लाल गदहपुर्ना और काली बर्बरी ।

मधूलिका—मूर्वा, यष्टी, जलमधूकश्च ।

७६ मधूलिका—मूर्वा, मुलेठी और जल महुआ

वितुन्नकम्–धान्यकम्, तुत्थकम्, गोनर्दश्च।

७७ वितुन्नक–धनिया तूतिया और केवटी मोथा ।

देवी—स्पृक्का, मूर्वा, वन्ध्याककोंटो च ।

७८ देवी—स्पृक्का, मूर्वा और बांझ खेकसा ।

वसुकः—शिवमल्ली, श्वेतार्कः, रोमकः[6] च

७९ वसुक—बड़ी मौलसिरी, सफेद आक और सांभर नोन ।

गण्डीरः–शाकविशेषः, मञ्जिष्ठा, गण्ड दूर्वा च ।

८० गण्डीर–गण्डारी नामक शाकविशेष, मंजीठ और गांडर दूब ।

लाङ्गली—कलिहारी, जलपिप्पली, नारिकेलश्च ।

८१ लाङ्गली-कलिहारी,जलपीपल और नारियल।

पिच्छिला–शिंशपा, शाल्मलिः, भूतवृक्षश्च।

८२ पिच्छिला—शीशम, सेमर और लिसोढ़ा ।

महासहा–माषपर्णी, अम्लातकः, कुब्जकश्च।

८३ महासहा—माषपर्णी, बाणपुष्प और कूजा ।

चन्द्रिका–मेथी, चन्द्रशूरः, श्वेतकण्टकारी च ।

८४ चन्द्रिका-मेथी, चनसुर और सफेद भटकटैया ।

इति त्र्यर्थानि नामानि ।

१. गन्धपलाशी का पर्याय पलाशी है न कि पलाशः ।

२. ध. नि. एवं रा. नि. ने पलाशी पर्याय तेजपत्र के लिये लिखा है ।

३. ध. नि. एवं रा. नि. ने कांस्य का पर्याय लोह लिखा है ।

४. शतपत्री का सहा पर्याय भा. प्र., रा. नि. एवं ध. नि. में नहीं है ।

५. नाकुली का सुरसा पर्याय भा. प्र. में है, सुवहा नहीं ।

६. रा. नि. एवं ध. नि. में रोमक के वसुक, वसु पर्याय मिलते हैं ।



# अथ चतुरर्थकानि नामान्याह

## चार अर्थ वाले शब्द

श्वेतपुष्पा—इन्द्रवारुणी, सिन्दुवारः, श्वेतार्कः, सैरेयकश्च ।

१ श्वेतपुष्पा—इन्द्रायण, मेउड़ी, सफेद आक और कटसरैया ।

कारवी–पृथ्वीका[1],शतपुष्पा, कालाजाजी, अजमोदा च ।

२ कारवी—पृथ्वीका, शतपुष्पा, कलौंजी और अजमोदा ।

अम्बष्ठा–पाठा, चाङ्गेरी, माचिका, यूथिका च इति ।

३ अम्बष्ठा–पाढ़ी, चांगेरी, माचिका और जूही।

इति चतुरर्थकानि नामानि ।

# अथ बह्वर्थकानि नामान्याह

## बहुत अर्थवाले शब्द

अक्षशब्दः स्मृतोऽष्टासु सौवर्चलबिभीतके । कर्षपद्माक्षरुद्राक्षशकटेन्द्रियपाशके ॥ १ ॥

१ अक्ष–(१) काला नमक, (२) बहेड़ा, (३) कर्षनामक तौल (४) कमलगट्टा, (५) रुद्राक्ष, (६) गाड़ी, (७) इन्द्रिय और (८) पासा ( जुआ खेलने का साधन ) इन ८ अर्थों में अक्ष का प्रयोग होता है ॥ १ ॥

काकाख्यः काकमाची च काकोली काकणन्तिका । काकजङ्घा काकनासा काकोदुम्बरिकाऽपि च॥ सप्तस्वर्थेषु कथितः काकशब्दो विचक्षणैः ॥ २ ॥

२ काक–(१) कौवा, (२) मकोय, (३) काकोली, (४) काक गुञ्जा, (५) काकजङ्घा, (६) काकनासा और (७) कठूमर इन सात अर्थों में काक शब्द का प्रयोग होता है ॥ २ ॥

सर्पद्विरदमेषेषु सीसके नागकेसरे । नागवल्ल्यां नागदन्त्यां नागशब्दः प्रयुज्यते ॥ ३ ॥

३ नाग–(१) साँप, (२) हाथी, (३) भेड़ा, (४) सीसा ( धातु ), (५) नागकेसर, (६) पान और (७) नागदन्ती ( दन्तीभेद ) इन ७ अर्थों में नाग शब्द का प्रयोग होता है ॥ ३ ॥

मांसेद्रवे चेक्षुरसे पारदे मधुरादिषु । बोले[2] रागे विषे नीरे रसो नवसु वर्त्तते ॥ ४ ॥

४–रसः–(१) मांस का रस, (२) द्रव पदार्थ, (३) ऊख का रस, (४) पारा, (५) मधुरादि ६ प्रकार के रस, (६) बोल, (७) राग (अनुराग ), (८) विष और (९) जल इन ९ अर्थों में रस शब्द का प्रयोग होता है ॥ ४ ॥

इति श्रीमिश्रलटकनतनयश्रीमिश्रभावविरचिते भावप्रकाशे मिश्रप्रकरणे चतुर्विंशोऽनेकार्थवर्गःसमाप्तः ॥२४॥

इति भावप्रकाशे पूर्वखण्डे प्रथमभागे द्रव्यगुणप्रकरणापरनामकं षष्ठं मिश्रप्रकरणं समाप्तम् ॥ ६ ॥

समाप्तश्चायं निघण्टुभागः ।

१. पृथ्वीका का पर्याय कारवी नहीं मिलता । पृथ्वीका, बृहदेला तथा हिंगुपत्री दोनों का पर्याय है किन्तु इनके कारवी पर्याय न होने से यहाँ दोनों में से कोई नहीं हो सकता । ध. नि. में कारवी का एक अन्य पर्याय कटुतुम्बी ( त्रपुसविशेष ) दिया है ।

२. स्वादेति पाठा० ।

# निघण्टु परिशिष्ट १

१ अ०–अंजबार । ले०–Polygonum viviparum Linn. ( Fam. Polygonaceae ).

इसके पौधे कश्मीर से सिक्किम तक पाये जाते हैं। वास्तविक अंजबार संभवतः बाहर से आता है एवं यह उसका भारतीय प्रतिनिधि है। यह कषाय एवं रक्तस्तंभक है। सोजाक, प्रदर एवं व्रण में इसके क्वाथ से प्रक्षालन किया जाता है। रक्तपित्त एवं रक्तातिसार में इसका प्रयोग करते हैं।

२ हिं०–अंजीर । सं०–फल्गु । अं०–Fig. ले०–Ficus carica Linn. ( Fam. Moraceae ).

इसके मध्यम प्रमाण के वृक्ष बलूचिस्तान में होते हैं। उत्तर पश्चिम भारत तथा दक्षिण में इसको लगाते हैं। इसके अनेक प्रकार पाये जाते हैं। इसके सुखाये फलों को माला की तरह गूँथकर बेचते हैं। यह स्नेहन, विरेचक तथा पोषक है। ताजे हरे फल का दूध दाहक तथा स्फोटोत्पादक होता है। मात्रा २ से ४ फल।

३ हिं०–अंबर । सं०–अग्निजार, तुन्दामय (रा. नि.) । अं०–Ambergris.

ह्वेल मछली की आंतों में होने वाली यह रोगजन्य ग्रन्थि होती है जो मछली के मरने के बाद समुद्री किनारों पर तैरती हुई या शिकार के पश्चात् आंतों में पाई जाती है। रसेन्द्रचूणामणि ( अ० ११ ) में अंबर को अग्निनक्र नामक समुद्र के प्राणी का जरायु बतलाया गया है। राजनिघण्टु में इसे 'तुन्दामय' ( पेट का रोग ) कहा गया है जिससे ऐसा मालूम होता है कि उस समय भी यह ज्ञान था कि यह पेट में होने वाली व्याधिरूप ग्रन्थि है। ताजी अवस्था में इसमें विष्ठा जैसी गंध होती है। यह बाहर से धूसर, श्याम, भीतर से कुछ श्वेत तथा सूक्ष्म दानेदार, हलका, हलकी मीठी गन्धयुक्त, भिदुर, एवं गरम करने से मोम जैसा पिघलता है तथा जल में अविलेय किन्तु उष्ण सुरासार, ईथर तथा तेल में विलेय होता है। यह उष्ण, कटु, त्रिदोषघ्न, वातघ्न, दीपन, पाचन, बल्य एवं वाजीकर होता है। इसका उपयोग धनुर्वात, पक्षाघात, नपुंसकता तथा शीतजन्य हृदय एवं मस्तिष्क के विकारों में करते हैं। मात्रा—१ से २ रत्ती।

४ हिं०–अगर-अगर । अं०–Agar-agar.

इसे जेलिडियम अमान्साइ ( Gelidium amansii Kutz ) तथा अन्य समुद्री काई ( Algae ) से बनाते हैं। यह कुछ पारभासक, चीमड़, वर्णहीन,

चमकीला, अत्यल्प गंधयुक्त एवं स्वाद में गोंद जैसा पदार्थ होता है जो विभिन्न स्वरूपों में बिकता है। यह शीत जल में फूल जाता है तथा उबलते जल में घुल जाता है किन्तु ठंडा होने पर फिर जेली की तरह जम जाता है। यह मल की मात्रा को बढ़ा कर मृदु विरेचक का काम करता है। सेवन के पश्चात् यह जलीय अंश को सोखकर फूल जाता है तथा आंत्र की पुरस्सरण गति को बढ़ाता है।

५ हिं०–अर्गट। अं०–Ergot. ले०–Claviceps purpurea Tulasne (Fam. Hypocreaceae)।

यह एक फफूंद है जो Secale cereale Linn. नामक पौधे के विकृत गर्भाशय पर उत्पन्न होता है। यह १ से ३ से. मी. लंबा, १ से ५ मि. मी. चौड़ा, दोनों तरफ नोकीला, गहरा बैंगनी या काला होता है तथा उसके प्रत्येक पृष्ठ पर लंबाई में एक धारी होती है। भीतर यह श्वेत या गुलाबीपन लिये होता है। इसकी गंध एवं स्वाद अप्रिय होता है।

गर्भाशय तथा परिसरीय धमनिकाओं पर इसका संकोचक प्रभाव पड़ता है इसलिये गर्भाशय संकोच को बढ़ाने के लिए या रक्तस्राव रोकने के लिए पाश्चात्य चिकित्सा में इसका तथा इसके सत्व का उपयोग किया जाता है।

६ सं०–अधःपुष्पी। हिं०–अन्धाहुली। ले० Trichodesma indicum R. Br. (Fam. Boraginaceae)। इसके पौधे सभी मैदानी भागों में होते हैं। नीले या श्वेत वर्ण के पुष्प खिलने पर नीचे की तरफ लटक जाते हैं जिससे इसे अधोपुष्पी कहते हैं।

यह शोथहर, मूत्रल एवं विषघ्न है। सन्धिशोथ एवं फोड़े आदि पर इसका मूल पीसकर लेप करते हैं। सर्पविष में मूल का उपयोग किया जाता है। अपरस में भी इसे उपयोगी मानते हैं।

७ हिं०–अनानास। अं०–Pineapple. ले०–Ananas comosus Merr. (Fam. Bromeliaceae).

ब्राज़ील का आदिवासी यह बहुवर्षायु पौधा अब आसाम, बंगाल तथा पश्चिमी किनारे पर लगाया हुआ पाया जाता है। इसमें छोटे काण्ड पर गुच्छाकार, लंबे एवं दन्तुर पत्तों का समूह निकला रहता है। फल बड़ा, खुरदरा तथा भीतर से पीले या हलके नारंगी रंग का रहता है। इसके अनेक प्रकार होते हैं। इसका फल खाया जाता है। यह कुछ मूत्रल एवं पाचक होता है। कच्चे फल का रस विरेचक, कृमिघ्न तथा गर्भपातक होता है।

८ अ०, फा०–अफसंतीन। अं०–Wormwood. ले०–Artemisia absinthium Linn. (Fam. Compositae).



यह सुगंधि तथा कड़वा क्षुप कश्मीर में ५-७ हजार फीट की ऊँचाई तक होता है। पुष्पवर्ग में दमनक का अरबी नाम अफसंतीन दिया गया है वह वास्तव में भारतीय अफसंतीन है, एवं यह विलायती अफसंतीन है। इसमें एक तेल होता है जो पाचन संस्थान के लिये उत्तेजक तथा बल्य होता है। अफसंतीन का उपयोग यकृत्शोथ, जीर्णज्वर, कृमि, आर्तवदोष एवं वातरोगों में करते हैं।

९ हिं०–अयापान। ले०–Eupatorium triplinerve Vahl. Syn. E. ayapana Vent. (Fam. Compositae).

यह अमेरिका का पौधा बागों में लगाया मिलता है। यह सुगन्ध युक्त एवं प्रसरणशील होता है। इसके पत्तों का उपयोग किया जाता है। पत्ते भालाकार, ऊपर से हरे, ३ शिराओं से युक्त, पतले एवं २-३ इंच लंबे तथा करीब १/२ इंच चौड़े होते हैं।

अल्प मात्रा में, उत्तेजक तथा बल्य होने के कारण ज्वर पूर्व की शीतावस्था तथा नवीन शोथयुक्त अवस्थाओं में इसे देते हैं। इसका फांट स्वेदल है तथा अधिक मात्रा में वामक है। इसका स्वरस रक्तस्तंभक होता है जिसका आंतरिक एवं बाह्य प्रयोग किया जाता है।

१० सं०–अरण्यजीरक, सोमराजी। हिं०–करजीरी। ले०–Centratherum anthelminticum Kuntze (Fam. Compositae).

इसका वर्षायु पौधा समस्त भारत में पाया जाता है। इसके फल १/६ इंच लंबे, १० धारीयुक्त, गहरे बादामी, श्वेताभ रोमावृत, शीर्ष पर सूक्ष्म भूरे रोमों से युक्त एवं स्वाद में कड़वे होते हैं।

यह सूत्रकृमि में लाभदायक होते हैं। अंकुशकृमि में इससे लाभ नहीं होता है।

११ सं०–आर्तगल। हिं०–करोनी, कुरथुवा। बंब०–शंकेश्वर। ले०–Xanthium strumarium Linn. (Fam. Compositae)

इसके क्षुप समस्त भारत में पाये जाते हैं। यह रूक्ष तथा कर्कश होते हैं। इसमें के स्त्री-मुण्डक (पुष्पव्यूह) एक कांटेदार, ०·५–१ इञ्च बड़े फल की तरह रचना बनाते हैं। इसके फलों का उपयोग आंख में रोहा होने पर अंजनादि के रूप में किया जाता है। इसकी पत्ती तथा मूल स्वेदल, लालास्राववर्धक, शामक, मूत्रल, एवं शोथघ्न होते हैं। जीर्णज्वर में इसके पत्तों का क्वाथ दिया जाता है। मसूरिका में जलन कम करने के लिये इसका उपयोग करते हैं। गंडमाला तथा पीडायुक्त ग्रंथियों पर फलों का लेप करते हैं। भावप्रकाश में नील सैरेयक को आर्तगल कहा गया है किन्तु श्री ठा. बलवन्तसिंहजी ने इसे आर्तगल माना है।

१२ सं०–आरुक। हिं–आड़ू। अं–Peach. ले–Prunus persica Batsch. (Fam. Rosaceae).

इसके लगाये वृक्ष हिमालय, निलगिरि, उत्तर भारत एवं मणीपूर में पाये जाते हैं। इसके फल जो खटमिट्ठे होते हैं खाये जाते हैं। इसके पुष्प विरेचक एवं मूत्रल हैं। इसका फल किंचित् उष्ण, बृंहण, किंचित् दोषकर तथा शीघ्र पचनेवाला होता है ( च. सू. अ. २७ )। इसके बीजों का तेल बालों में लगाते हैं।

ध० नि० ने आरुक की ४ जातियां मानी हैं जो कि आडू, आलुबुखारा, आलूबालू तथा आलूचा हो सकती हैं ऐसा श्री यादवजी ने लिखा है।

१३ आलूबोखारा। ले०–Prunus domestica Linn. ( Fam. Rosaceae ).

इसके फल काश्मीर तथा पंजाब में होते हैं। इनका स्वाद खटमिट्ठा होता है। इन्हें लोग खाते हैं। यह शीतल, मृदुसारक एवं पित्तप्रशमन हैं।

१४ हिं०–आलूचा। अं०–Plum. ले०–Prunus domestica Linn. var. insititia Bailey. ( Fam. Rosaceae ).

इसके वृक्ष हिमालय में पाये जाते हैं। यह आलुबुखारा का ही भेद है। इसके फल पीले, रक्ताभ एवं पकने पर मधुर रसदार होते हैं।

१५ हिं०–इपीकाक। अं०–Ipecacuanha। ले०–Cephaelis ipecacuanha ( Brot. ) A. Rich. ( Fam. Rubiaceae )

ब्राजील में होनेवाले उपर्युक्त विदेशी पौधे की जड़ का पाश्चात्य चिकित्सा में प्रयोग होता है। पहले भारत में यह नहीं होता था। अपने यहां के अनेक पौधों विशेषरूप से अन्त्रमूल, काकनासा ( Asclepias curassavica ) को इसके समान गुणवाला बतलाया गया है, किन्तु प्रयोगों से अभी इनकी पुष्टि नहीं हुई है। इसकी उपज का प्रयत्न अपने यहां किया जा रहा है तथा अब प० बंगाल में यह बहुतायत से होता है।

यह कफनिःसारक, वामक एवं स्वेदजनन है। बाह्य प्रयोग से यह क्षोभक है। इसका सत्त्व एमेटीन आमातिसार के लिये बहुत प्रयोग में आता है।

१६ हिं०–इसबगोल। सं०–इषद्गोल। ले०–Plantago ovata Forsk. ( Fam. Plantaginaceae ).

इसके पौधे पंजाब, सिंध तथा फारस आदि में पाये जाते हैं। इसके विभिन्न भेदों के बीज तथा बीजों की भूसी का व्यवहार किया जाता है। बीज छोटे, नौकाकार, कठोर, पारभासक, कुछ गुलाबी एवं जल में भिगोने पर काफी लुआब युक्त हो जाते हैं।

जीर्ण अतिसार तथा विबंध में इसका उपयोग करते हैं। यह मल की मात्रा को बढ़ाकर विबंध में लाभ करते हैं। बीज कठोर होने के कारण इनको कुछ घंटे जल में भिगोकर उपयोग में लाना चाहिये नहीं तो इनसे कभी-कभी प्रक्षोभ होकर कष्ट बढ़ सकता है। कभी-कभी इनसे मार्गावरोध भी हो सकता है। यह दोष भूसी में नहीं रहता। भूसी में पिच्छिलता होने के कारण पाचन संस्थान के किसी भी क्षोभयुक्त विकार में इसे देते हैं। अतिसार, प्रवाहिका, शुष्क कास, ज्वर एवं तृषा आदि में भी इसका उपयोग किया जाता है। मात्रा–½ से १ तोला।



१७ उटंगन। ले०–Blepharis edulis Pers. (Fam. Acanthaceae).

इसके पौधे पंजाब, सिंध तथा बलूचिस्तान में पाये जाते हैं। बाजार में इसके बीज मिलते हैं जो चिपटे तथा रोमाच्छादित होते हैं। जल में भिगोने पर इनसे काफी लुआब निकलता है। यह प्रायः बाहर से आयातित होते हैं। अन्य औषधियों के साथ इनका उपयोग नपुंसकता आदि के लिये करते हैं।

१८ सं०–उत्तमारणी, इन्दीवरी, वृश्चिकाली ?। हिं०–उतरन। ले०–Pergularia extensa N. E. Br. Syn. Daemia extensa R. Br ( Fam. Asclepiadaceae ).

यह बहुवर्षायु, दुग्धयुक्त, रोमश, कुछ दुर्गंधयुक्त, चक्रारोही लता समस्त भारत में पाई जाती है। इसकी फलियां १·५–२ इंच लंबी, नोकदार एवं मुलायम कंटक सदृश रचनाओं से ढँकी होती हैं जिसके आधार पर इसे शास्त्रीय वृश्चिकाली होने की संभावना श्री ठा० बलवन्तसिंहजी ने व्यक्त की है। इसके पत्तों का स्वरस कफनिःसारक एवं वामक होता है। पत्तों के कल्क का लेप कार्बंकल फोड़े पर लाभदायक होता है। आमवात में मूलत्वक् को दुग्ध के साथ विरेचन के लिये देते हैं। इसमें के ग्लूकोसाइड का गर्भाशय पर पिट्यूटरीन के सदृश प्रभाव पड़ता है। यह अनैच्छिक मांसपेशियों एवं रक्तवह संस्थान को उत्तेजित करता है तथा इससे रक्त का दबाव बढ़ता है।

१९ सं०–उरुमाण। हिं०–जर्दालु, खुबानी, खुरमानी। अं०–Apricot. ले०–Prunus armeniaca Linn. ( Fam. Rosaceae ).

इसके मध्यम आकार के वृक्ष उत्तर पश्चिम भारत में विशेषकर ६ से ९ हजार फीट की ऊंचाई पर लगाये हुये पाये जाते हैं। इसके फल ताजे तथा सुखाये हुये खाये जाते हैं। इसके बीजों को बदाम की तरह खाते हैं। बदाम की तरह इसमें भी कड़ुवा भेद होता है। यह मधुर, गुरु, स्निग्ध, उष्ण, बृंहण, बल्य तथा त्रिदोषहर है ( सु. सू. अ. ४६, च. सू. अ. २७ )।

२० बं०, हिं०–उलटकंबल। सं०–पिशाचकार्पास ?, पीवरी ?, अं०–Devil's Cotton. ले०–Abroma augusta Linn. ( Fam. Sterculiaceae ).

इसकी विस्तार में फैलने वाली मृदुरोमश झाड़ी उत्तरप्रदेश, बंगाल एवं आसाम में पाई जाती है। इसके मूल की छाल का चिकित्सा में उपयोग किया जाता है। इसके रेशे का उपयोग रस्सी बनाने के लिये किया जाता है। मूल भूरे रंग का, लंबाई

में सिकुड़ा हुआ, बीच-बीच में दानेदार, गंधहीन, चीमड़ तथा स्वादहीन होता है। ताजी अवस्था में काटने पर इससे गाढ़ा गोंद निकलता है तथा सूखी छाल जल में डालने पर लसदार हो जाती है। यह गर्भाशय के लिये बल्य, आर्तवजनन एवं स्नेहन है। पीडितार्तव तथा अन्य गर्भाशय विकारों में इसका प्रयोग बंगाल की तरफ देखा जाता है।

मात्रा—गाढ़ा लसदार गोंद २ माशा।

२१ हिं०, अ०—उश(ष)क अं-Gum Ammoniac. ले०—Dorema ammoniacum D. Don. ( Fam. Umbelliferae ).

इसके क्षुप फारस में होते हैं। यह इसका निर्यास है जो कि कीड़े आदि के क्षत से अपने आप बाहर निकलकर जम जाता है या नीचे गिरा हुआ प्राप्त होता है। इसके टुकड़े ५–२५ मि. मी. व्यास के, अपारदर्शक, बाहर से पीताभ किन्तु अन्दर से श्वेत तथा तोड़ने पर चमकीले मोम जैसे दिखलाई देते हैं। इसमें एक विशेष गंध होती है तथा इसका स्वाद कुछ तीतापन लिये कड़वा होता है। जाड़े में यह कड़ा तथा भंगुर हो जाता है किन्तु गरमी में नरम होकर आपस में चिपक जाता है। श्री यादवजी, सुश्रुतोक्त ऊषक कोई क्षारविशेष मानते हैं। अति प्राचीनकाल से यह कफनिःसारक, उत्तेजक एवं उद्वेष्टननिरोधी रूप में व्यवहार में आरहा है। इसका उपयोग प्रतिश्याय, कास, श्वास तथा यकृत-प्लीहावृद्धि में करते हैं। शोथ आदि पर इसका बाह्य उपयोग भी किया जाता है। इसकी जड़ धूपन के लिये काम आती है।

मात्रा—३ से ७ रत्ती।

२२ हिं०—उस्त ( स्तू ) खुदूस। ले०—1. Lavandula stoechas Linn. ( Fam. Compositae ). 2. Prunella vulgaris Linn.; Syn. Brunella vulgaris Linn. ( Fam. Labiatae ).

उपर्युक्त दोनों ही पौधों को उस्तखुदूस नाम दिया हुआ मिलता है। इनमें से द्वितीय, हिमालय तथा दक्षिण के पर्वतों पर पाया जाता है तथा प्रथम भूमध्यसागरीय प्रदेश का आदिवासी है जो पश्चिम भारत में बागों में लगाया पाया जाता है। संभव है दोनों में कुछ गुण समान हों। वास्तव में यूनानी हकीम जिस द्रव्य का उपयोग करते हैं वह फारस की खाड़ी से आता है। इसको मेध्य, वातनाड़ीबल्य, कफहर, शोथहर एवं वातानुलोमक मानते हैं। इसका उपयोग मास्तिष्क दौर्बल्यजन्य रोग जैसे अपस्मार, विस्मृति, पक्षाघात आदि एवं प्रतिश्याय, कास, श्वास, आमवात, नाड़ीशूल एवं शोथ में करते हैं।

२३ हिं०—ऊटकटेरा। सं०—उरकण्टक। ले०—Echinops echinatus Linn. ( Fam. Compositae ).

यह समस्त भारत में ५००० फीट की ऊँचाई तक पाया जाता है। इसका पौधा



रोमश १–३ फीट ऊँचा, अनेक शाखायुक्त एवं वर्षायु होता है। पत्ते ३ से ५ इञ्च लंबे, कांटेदार तथा अधरतल पर तूल रोमश होते हैं। पुष्पगुच्छ संयुक्त, श्वेत, गोल, २ इञ्च के घेरे में तथा कांटेदार होते हैं। यह तिक्त, पौष्टिक एवं मूत्रल होता है। इसका उपयोग कामला, कुपचन, स्वरभंग, गठिया तथा अपतंत्रक में किया जाता है।

२४ हिं०—ऊदसलीब मामेख। ले०—Paeonia officinalis Linn. ( Fam. Ranunculaceae ).

यह दक्षिण युरोप तथा पश्चिम एशिया में होता है तथा इसका मूल बाहर से आता है। इसका भारतीय प्रतिनिधि P. emodi Wall. पश्चिम हिमालय में कश्मीर से कुमाऊँ तक ५ से १० हजार फीट की ऊँचाई तक पाया जाता है। ऊदसलीब की जड़ १ से २ इंच लंबी, ½ से ¾ इञ्च मोटी, बीच में मोटी तथा दोनों तरफ पतली, बाहर से भूरी, भीतर पिष्टमय सफेद एवं कुछ तीती होती है। यह आर्तव प्रवर्तक एवं वातनाडियों के लिये बल्य है। गर्भाशय विकार, अपस्मार अपतंत्रक आदि वातरोग, उदरशूल, पित्तावरोध एवं जलोदर में इसका चूर्ण दिया जाता है। बच्चों को रक्तशोधनार्थ इसे देते हैं। इसके बीज विरेचक एवं वामक होते हैं। इसके फूलों का फांट अतिसार में लाभदायक है।

मात्रा—१ से ३ माशा।

२५ हिं०—कतीरा, कताद। अं०—Tragacanth Gum. ले०—Astragalus gummifer Labill. & other sp. of Astragalus. ( Fam. Leguminosae )

इसकी छोटी, अनेक शाखायुक्त तथा कांटेदार झाड़ियाँ करीब १ मीटर ऊँची होती हैं जो दक्षिण तथा पूर्वी युरोप की आदिवासी हैं। यद्यपि भारत में अॅस्ट्रॅगॅलस की अनेक जातियां ( स्पीसीज ) होती हैं तथापि कतीरा गोंद प्राप्त किया जा सकता है ऐसी A. strobiliferus Royle है जो ऊपरी कुर्रम तथा चित्राल में पाई गई है। इसमें चीरा लगाने की विधि के अनुसार गोंद की लंबी पट्टियां या छोटे टुकड़े प्राप्त होते हैं। फारस से आनेवाला कतीरा सबसे अच्छा होता है। दूसरा स्मिर्ना से आता है वह उतना अच्छा नहीं होता। फारसी कतीरा की पट्टियां ३ सें० मी० लंबी, १ सें० मी० चौड़ी, एवं २ मि० मी० मोटी, कुछ पारभासक, गंधहीन एवं प्रायः स्वादहीन होती हैं। जल में भिगोने पर यह काफी फूल जाता है। व्यापारी कतीरा कई प्रकार का होता है। जो अच्छा होता है उसका उपयोग औषधि निर्माण एवं सौंदर्य प्रसाधन आदि में किया जाता है तथा हीन श्रेणी का वस्त्रोद्योग में काम आता है।

भारतीय कतीरा (Sterculia gum, Karaya gum). यह ले०—Sterculia urens Roxburgh ( Fam. Sterculiaceae ); हिं०—कुल्लू, गुलू तथा

इसकी अन्य जातियों से प्राप्त होता है जो अनेक स्थानों पर होते हैं। कुल्लू के बड़े वृक्ष होते हैं। इसकी छाल सफेद तथा कागज की तरह छूटनेवाली होती है तथा पत्ते ५ खण्ड युक्त एवं पुष्प लाल-भूरे होते हैं। इसका गोंद विभिन्न आकार के टुकड़ों में होता है जो श्वेताभ, हलका भूरा या कुछ गुलाबीपन लिये होता है। इसपर छाल के छोटे टुकड़े लगे रहते हैं। इसमें सिरके जैसी कुछ गंध होती है तथा स्टार्च के कण नहीं होते जो वास्तविक कतीरा में होते हैं।

एक अन्य वृक्ष-सं०-गलगल; हि०-कुंबी, पीलीकपास; अं०-Yellow cotton tree; ले०-Cochlospermum religiosum ( Linn. ) Alston ( Fam. Cochlospermaceae ) भारत में अनेक स्थानों पर पाया जाता है। इसके गोंद को हॉगगम ( Hoggum ) या कतीरा-हिन्दी ( Katira gum ) कहते हैं। इसका छोटा या मध्यम आकार का वृक्ष होता है। इसका काष्ठ बहुत मुलायम, पत्ते ५ खण्डयुक्त, पुष्प बड़े चमकीले पीत तथा फल के अन्दर के बीज पीले रंग की रेशम जैसी रूई से ढँके रहते हैं। इसका गोंद हलके पीताभ श्वेत रंग का, कुछ पारभासक, आवेष्ठल में धारीदार एवं तोडने पर चिपटे शल्कों में टूटता है। इसे भारतीय कतीरा या वास्तविक कतीरा के स्थान पर उपयोग में लाते हैं।

कतीरा—शीतल, पिच्छिल, दाहशामक, रक्तस्तम्भक एवं मृदुसारक होता है। इसका उपयोग कास, गले के विकार, रक्तप्रदर एवं बस्तिक्षोभ में करते हैं।

२६ हिं०-कॅस्कॅरा । Cascara Sagrada. ले०-Rhamnus purshiana Dc. ( Fam. Rhamnaceae ).

अमेरिका तथा केनिया में होने वाले इस वृक्ष की छाल का उपयोग मृदुविरेचक के रूप में किया जाता है। वृक्ष से छुड़ाने के बाद इस छाल को कम से कम एक वर्ष तक रख दिया जाता है तब इसको उपयोग में लाते हैं। पतली छाल अधिक अच्छी मानी जाती है। इस पर बाहर से रजताभ धूसर काई आदि लगी रहती है। इसका वर्ण गहरा बैंगनीपन लिये भूरा होता है। इसका स्वाद कड़वा तथा इसमें हलकी गंध होती है।

२७ हिं०-कॉफी। अं०-Coffee. ले०-Coffea arabica Linn. ( Fam. Rubiaceae ).

इस सुप्रसिद्ध पेय के बीज एक झाड़ी या छोटे वृक्ष से प्राप्त होते हैं जिसकी खेती दक्षिण में की जाती है। इसके कई अन्य भेदोपभेद होते हैं। कुछ वन्य जातियाँ भी हिमालय तथा दक्षिण में पाई गई हैं। उपर्युक्त जाति अबसीनिया से अरबों द्वारा आयी हुई मानते हैं। काफी के बीजों को भूनकर, बुकनी कर जल में उबालकर पेय बनाते हैं जो उत्तेजक तथा मूत्रल होता है। कुछ अन्य बीजों को इसमें मिलावट के लिये या इसके प्रतिनिधि रूप में व्यवहार में लाया जाता है।



२८ हिं०-कायपुटी । काजुपट । अं०-Cajuput Tree. ले०-Melaleuca leucadendron Linn. ( Fam. Myrtaceae ).

यह आस्ट्रेलिया का आदिवासी वृक्ष अब भारत के बगीचों में भी लगाया हुआ मिलता है। इसका वृक्ष मध्यम आकार का होता है। इसकी छाल सफेद, मुलायम एवं पपड़ियों में छूटती है। इसके पत्ते आयताकार-दीर्घवृत्ताकार तथा तैलीय ग्रन्थियों के धब्बों से युक्त, पुष्प छोटे, श्वेताभ मंजरी में तथा फल गोल एवं कड़े होते हैं। इसके पत्तों से एक सुगंधि तैल प्राप्त किया जाता है। यह रंगहीन या कुछ पीताभ, स्वाद में कडवा एवं कर्पूरवत् गंध युक्त होता है। अधिकतर यह फ्रांस तथा नेदरलैण्ड से आता है। इसका तेल वातानुलोमक, कफनिःसारक एवं प्रतिक्षोभक है। इसका बाह्य प्रयोग सन्धिशोथादि में, दन्तशूल में तथा मच्छर आदि भगाने के लिये करते हैं। कास, स्वरभंग तथा आध्मान में इसका आन्तरिक प्रयोग चीनी में मिलाकर करते हैं।

२९ हिं०-कासनी ग्राम्य । अं०-Garden Endive. ले०-Cichorium endivia Linn. ( Fam. Compositae ).

इसके पौधे सभी स्थानों पर लगाये पाये जाते हैं जिनमें से चौड़ी तथा मुड़ी हुई पत्तीवाला प्रकार अच्छा माना जाता है। यह पित्तशामक एवं शोथहर होता है। इसकी जड़ ज्वर, आर्तवविकार तथा कुपचन में दी जाती है। इसके फल पैत्तिकविकार, ज्वर, शिरःशूल तथा कामला में दिये जाते हैं। बीजों का शरबत मूत्रकृच्छ्र में देते हैं।

३० हिं०-कासनी वन्य । अं०-Chicory, Wild Endive. ले०-Cichorium intybus Linn. ( Fam. Compositae ).

इसके पौधे पंजाब, उ० प० सीमांतप्रदेश तथा हैदराबाद में पाये जाते हैं। बंबई में इसे लगाते भी हैं। इसका उपयोग ज्वर, वमन, विरेचन तथा प्लीहावृद्धि में करते हैं। इसके बीज मूत्रकृच्छ्र में दिये जाते हैं। इसके मूल का उपयोग काफी में मिश्रण के लिए किया जाता है।

३१ हिं०-काहू—यह बागी तथा वन्य दो प्रकार का होता है।

१ बागी सलाद । अं०-Garden Lettuce; ले०-Lactuca sativa Linn. ( Fam. Compositae ).

२ वन्य काहू । अं०-Prickly Lettuce; ले०-Lactuca serriola Linn. ( Fam. Compositae ).

बागी सलाद की खेती सब स्थानों पर करते हैं, जिसके पत्तों का उपयोग सलाद के रूप में किया जाता है। इसके अनेक भेदोपभेद पाये जाते हैं। इसमें अनेक विटामिन तथा खनिज होने के कारण इसकी गणना पोषक सागों में की जाती है।

वन्यकाहू के पौधे हिमालय में ६ से १२ हजार फीट की ऊंचाई तक पाये जाते हैं। इसके पत्र खण्डित एवं कंटकित होते हैं। बीज धूसर, आयताकार, १ से० मी० लंबे तथा १–२ मि० मी० चौड़े होते हैं। इस पौधे से, पत्तों की अपेक्षा बीजों का अधिक संग्रह किया जाता है।

बीजों का चूर्ण कास में तथा क्वाथ अनिद्रा में देते हैं। निद्रानाश तथा पित्तज शिरः शूल में इनका लेप लाभदायक है। इन्द्रलुप्त या बालों को गिरने से रोकने के लिये इसको कूठ के साथ पीसकर लेप करते हैं। बीजों के सेवन से कामवासना की कमी तथा शुक्र में गाढ़ापन होता है। बीजों का तेल भी निद्राजनन, ज्वरहर तथा बालों के लिये हितकर माना जाता है।

इन पौधों में दुग्ध होता है जिसे संग्रह किया जाता है। इसे काहू की अफीम कहते हैं। वन्य पौधे से प्राप्त काहू की अफीम अधिक अच्छी होती है। पाश्चात्यवैद्यक में प्रयुक्त काहू की अफीम ( Lactucarium ) प्रायः L. virosa Linn. से प्राप्त की जाती है जो विदेश से आती है। इसके छोटे २-टुकड़े, बाहर से धूसराभ या हलके ललाई लिये भूरे रंग के किन्तु अन्दर से हलके भूरे रंग के, कुछ सुषिर, कड़वे एवं अफीम जैसी गंध से युक्त होते हैं। यह मूत्रल, शामक एवं निद्राजनन मानी जाती है। इसका उपयोग अनिद्रा, कास, श्वास तथा ज्वरजन्य प्रलाप में किया जाता है।

३१ हिं०–कुंगकु। अं०–Euonymus. ले०–Euonymus tingens Wall. ( Fam. Celastraceae ).

इसका छोटा वृक्ष हिमालय में ६५००–१०,००० फीट की ऊँचाई तक सतलज से नेपाल तक पाया जाता है। इसकी छाल नेत्र रोगों में लाभदायक मानी जाती है। जीर्ण विबंध तथा कुपचन में इसको देते हैं। वास्तविक यूनिमस जो कि E. atropurpureus Jacq की छाल है एवं जो उ० अमेरीका से आती है, उसका यह भारतीय प्रतिनिधि है। यूनिमस का उपयोग पित्तविरेचक रूप में किया जाता है। इसके भीतर की छाल जो पीतवर्ण होती है उसका नेपाल में टीका की तरह उपयोग करते हैं।

३२ सं०–कृष्णबीज । हिं०–कालादाना । ले०–Ipomoea hederacea Jacq. ( Fam. Convolvulaceae ).

इसकी लोमयुक्त, लपेटकर चढ़नेवाली लताएँ होती हैं जिनके काण्ड पर पीछे की ओ मुड़े हुए घने लंबे लोम होते हैं। यह समस्त भारत में होती है। पत्ते सवृन्त, लोमश, लट्वाकार हृद्वत् , ३ से ५ इंच लंबे, त्रिखण्डित एवं पुष्प भड़कदार नीले या गुलाबी रंग के होते हैं। इसके बीजों का उपयोग किया जाता है। यह ५·५ मि० मी० लंबे, ३·७ मि० मी० चौड़े, काले एवं चिकने होते हैं। १०० बीजों का वजन करीब ३ से ४ माशा होता है। इसका स्वाद प्रारम्भ में मधुराम किन्तु बाद में चरपरा होता है। इसका चूर्ण अच्छा विरेचक है। जलापा का यह अच्छा प्रतिनिधि है।



कौडेना ( I. muricata Jacq. ) के बीज जो कुछ बादामी, ८·५ मि० मी० लंबे एवं ६ मि० मी० चौड़े होते हैं, इसके प्रतिनिधि रूप में उपयोग में आते हैं।

मात्रा—२ से ३ माशा।

३४ हिं०–कोकेन। अं०–Coca, Cocaine plant. ले०–Erythroxylum coca Lam. ( Fam. Erythroxylaceae ).

इसकी झाड़ी या छोटे वृक्ष होते हैं जिसकी खेती जावा तथा ईस्टइण्डोज तथा वेस्टइण्डोज में की जाती है। इसके पत्ते अंडाकार तथा गहरे हरे रंग के, पुष्प पीताभ श्वेत एवं फल छोटे, कड़े तथा गहरेलाल रंग के होते हैं। भारतवर्ष में इसकी कृषि का प्रयत्न सफल नहीं हुआ है एवं इसके व्यापार पर सरकारी नियंत्रण है। इसकी पत्तियां स्वाद में कड़वी होती हैं तथा इसके सेवन से उत्तेजना होती है तथा आह्लाद मालूम पड़ता है। इसको पत्तियों से कोकेन नामक क्षाराभ प्राप्त किया जाता है जिसका उपयोग स्थानिक स्वापजनन के लिये किया जाता है।

३५ सं०–कोश। हिं०–रेशम का कोया, आबरेशम । अं०–Silk pod, Cocoons.

यह रेशम के कृमि के द्वारा बनाया हुआ एक प्रकार का कीटगृह है। रेशम के कीड़े अधिकतर शहतूत के पत्तों पर पाले जाते हैं। ये कीड़े अपने मुँह से एक प्रकार का तार निकाल कर अपने ही ऊपर लपेट कर यह कीटगृह बनाते हैं जिसके अन्दर स्वतः मर जाते हैं। कभी-कभी ये बाहर भी निकल जाते हैं लेकिन तब वह कोश अच्छा नहीं होता। यह कोश पीताभ श्वेत एवं अण्डाकार होता है। इसे कैंची से काटकर, कीड़े को निकालकर फिर चूर्ण करके व्यवहार में लाते हैं। यह उष्ण, रूक्ष, मस्तिष्कादि उत्तमांगों को बल देने वाला, वर्ण्य एवं कफनिःसारक है। इसकी भस्म लेखन तथा व्रणरोपण है एवं नेत्ररोग तथा सद्योव्रण पर इसे लगाते हैं।

३६ फा०–खत्मी। हिं०–गुलखैरो। ले०–Althaea officinalis Linn. ( Fam. Malvaceae ).

यह बहुवर्षायु क्षुप पंजाब, कश्मीर तथा यूरोप में भी पाया जाता है। बगीचों में लगाये हुये हॉलीहाक ( Hollyhock ), जो ले०-A. rosea Cav. है, की तरह यह दिखलाई देता है। इसके मूल अनेक, ३० से० मी० तक लंबे, श्वेत, रेशेदार एवं हलकी गंधयुक्त तथा स्वाद में मधुर एवं लुआबदार होते हैं। इन्हें रेशाखत्मी कहते हैं। इसके फलों को गुलखेरू एवं बीजों को तुख्मखत्मी कहते हैं। इसकी

अब स्नेहन होती है। इसे प्रतिश्याय, खांसी एवं अतिसारादि में देते हैं। इसके बीज एवं पत्तों को शोथपर बांधते हैं। मात्रा ५ से ७ माशा।

३७ अ०-खुब्बाजी। अं०-Mallow Leaves, Malvae Folia ले०-Malva sylvestris Linn. ( Fam. Malvaceae ).

इसका सीधा पौधा कश्मीर से कुमाऊँ तक तथा बिहार, दक्खन एवं बागों में लगाया मिलता है। इसके पत्ते ३ से ७ खण्ड वाले, लंबे वृन्तयुक्त, पुष्प बैंगनी रंग के, फल चिकने एवं बीज वृक्काकार होते हैं। इसके पत्तों का साग खाते हैं। इसमें काफी पिच्छिल पदार्थ होता है। यह स्नेहन, शीतल एवं प्रतिदूषक है। कास तथा अन्य फुप्फुस रोगों में तथा बस्तिदाह आदि में इसका उपयोग करते हैं। इसके पुष्प एवं अपक्व फल कुकास में दिये जाते हैं। फोड़े आदि पर इसका बाह्य लेप किया जाता है।

इसके अन्य भेद M. rotundifolia Linn. को भी खुब्बाजी कहा जाता है। इसे कुछ लोग सुवर्चला ( पृ० ४१४ ) मानते हैं। इसके पौधे सिमला, कुमाऊँ, उत्तरप्रदेश के मैदानी भाग तथा दक्षिण में पाये जाते हैं। इसका उपयोग मधुमेह, आमाशय विकार तथा आर्तव प्रवर्तक रूप में करते हैं। इसका उपयोग स्वेदन के लिये तथा पोल्टिस के रूप में भी किया जाता है। अन्य प्रयोग खुब्बाजी की तरह हैं।

३८ हिं०-खूनखराबा, हीरादोखी। सं०-रक्तनिर्यास। अं०-Dragon's blood. ले०-Daemonorops draco Blume and other sp. (Fam. Palmae).

बेंत की तरह इसकी आरोही एवं काँटेदार लताएँ सुमात्रा, बोर्निओ एवं पेनांग में होती हैं। इसके फलों पर एक तरह की राल रहती है जिसे बोरे आदि से रगड़ कर निकालते हैं तथा बाद में धूप या बाष्प से विभिन्न आकार के टुकड़ों में बनाते हैं। यह गहरा लाल, चबाने पर किरकिरा तथा गंध एवं स्वादहीन होता है। शुद्ध रूप में यह पूर्ण रूप से सुरासार में विलेय होता है। बाजार के द्रव्य में २०-४० % अन्य मिलावट पाई जाती है। दूसरे भी वृक्षों के निर्यास का इसमें मिश्रण होता है। वार्निश, रंग एवं दन्त मंजनों में इसका उपयोग करते हैं। इसका रक्तातिसार, प्रवाहिका एवं नेत्र रोगों में उपयोग करते हैं। मात्रा १ से १५ माशा।

३९ हिं०-खूबकलां, खाकसी ( र )। ले०-Sisymbrium irio Linn. ( Fam. Cruciferae ).

इसके पौधे उत्तर भारत, राजपुताना, पंजाब, पेशावर, बलुचिस्तान तथा कोहाट में होते हैं। फारस से बीजों का आयात होता है। इसके बीज अत्यन्त छोटे, ललाई लिये पीले तथा लंबगोल होते हैं। जल में डालने पर यह लुआबदार हो जाते हैं तथा इनका स्वाद राई की तरह तीक्ष्ण होता है। यह पौष्टिक एवं उत्तम कफ निःसारक



हैं। कफज्वर, श्वास, स्वर भंग तथा अन्य कफविकारों में इसका बहुत अच्छा उपयोग होता है। सूजन पर इसका पुल्टिस बांधते हैं।

४० हिं०-गर्जन। सं०-अश्वकर्ण। ले०-Dipterocarpus alatus Roxb. and other sp. ( Fam. Dipterocarpaceae ).

इसके ऊंचे वृक्ष आसाम तथा अंडमान के जंगलों में होते हैं। इसके कई अन्य भेद पाये जाते हैं। इससे एक प्रकार का रालीय तेल प्राप्त होता है। सुजाक में गर्जन का तेल लाभदायक होता है। इसकी क्रिया कोपैवा की तरह होती है। इसका बाह्य प्रयोग व्रण में करते हैं।

४१ अ० गार, हब्बुलगार। अं०-Sweet Bay, True Laurel Bay, Berries। ले०-Laurus nobilis Linn. ( Fam. Lauraceae ).

इस सुगंधित पत्तों वाले, छोटे वृक्ष को युरोप तथा अमेरिका में सौंदर्य के लिये लगाते हैं। अपने यहां भी इसे लगाने का प्रयत्न किया गया है। इसके फल बाहर से आते हैं यह अंडाकार, १५ मि. मी. लंबे, १० मि. मी. चौड़े, काले, कुछ झुर्रीदार तथा एक बीज युक्त होते हैं। इनका स्वाद कड़वा तथा इनमें विशेष गंध होती है। इसके पत्ते तथा फल सुगन्धि, उत्तेजक तथा मादक होते हैं एवं इनका पहले हिस्टीरिया, अनार्तव तथा उदर शूल में प्रयोग किया जाता था लेकिन अब आंतरिक प्रयोग कम किया जाता है। इसके तेल का बाह्य प्रयोग मोच, मरोड़ तथा पशु चिकित्सा में किया जाता है। पत्तों का उपयोग सुगन्धि के लिये मसाले के रूप में किया जाता है। यूनानी चिकित्सक इसका कफज एवं वातिक विकारों में तथा मूत्र रोगों में उपयोग करते हैं।

४२. सं०-गिरिपर्पट, वनवृन्ताक। हिं०-पापड़ा, पाप्री, वनककड़ी। अं०-Indian Podophyllum। ले०-Podophyllum hexandrum Royle; Syn. P. emodi Wall. (Fam. Berberidaceae).

इसके पौधे हिमालय में सिक्किम से हजारा तक, ९ से १४ हजार फीट की ऊँचाई तक तथा काश्मीर में ६ हजार फीट तक पाये जाते हैं। इसके मूल तथा रेजिन का उपयोग किया जाता है। मूल के टुकड़े कुछ गोल या चिपटे, गांठदार, पीताभ धूसर या मटमैले, २-४ से. मी. लंबे तथा १-२ से. मी. मोटे, भीतर से हलके रंग के, स्वाद में कटुतिक्त तथा हलकी गंध युक्त होते हैं। यह विदेशी पौधे P. peltatum Linn. का अच्छा प्रतिनिधि है। इसमें पोडोफाइलीन (Podophyllin ) नामक रेजिन अधिक होता है। यह रेजिन पित्त विरेचक होता है। इसकी क्रिया अत्यन्त उग्र किन्तु धीरे-धीरे होती है। अन्य वातानुलोमक द्रव्यों के साथ इसकी गोली जीर्ण विबन्ध में दी जाती है। आंखों के लिये यह अत्यन्त प्रक्षोभक होने से इसको सावधानी से उपयोग में लाना चाहिये। मात्रा—रेजिन १ से २ रत्ती।

४३ हिं०-गुलब्बास। अं०-Four O' clock Plant. ले०-Mirabilis jalapa Linn. (Fam. Nyctaginaceae).

इसकी वर्षायु झाड़ी होती है जो बागों में सौन्दर्य के लिये लगाते हैं। इसमें कुप्पी के आकार के, सुगंन्धित, श्वेत, पीत, बैंगनी, लाल आदि रंगों के फूल आते हैं जो दोपहर के बाद खिलते हैं तथा सुबह मुकुलित हो जाते हैं। इसकी गांठदार जड़ों को गलती से जलापा के स्थान पर प्रयोग किया जाता रहा जो वास्तव में भिन्न है। इसमें भी अल्प विरेचक गुण होता है। इसके बीजों को काली मिर्च में मिलावट के लिये उपयोग में लाते हैं।

४४ हिं०-गेंदा। सं०-झण्डु। ले०-Tagetes erecta Linn. (Fam. Compositae).

इसे फूलों के लिए बागों में लगाते हैं। यह कटु, कषाय है और ज्वर एवं भूतग्रह का नाश करने वाला है (रा० नि०)। इसके फूलों का रस रक्तार्श में देते हैं। इसके पत्तों को शोथ पर लगाते हैं तथा इनका स्वरस कर्णशूल में डाला जाता है। पुष्पों का नेत्र विकार तथा व्रण में बाह्य उपयोग करते हैं।

४५ सं०-गोरक्षी, गोरक्षचिंचा, शीतफल, रावणाम्लिका। हिं०-गोरखइमली। ले०-Adansonia digitata Linn. (Fam. Bombacaceae).

अफ्रीका का आदिवासी यह वृक्ष उत्तरप्रदेश, बिहार, बंबई तथा मद्रास में लगाया हुआ मिलता है। इसका वृक्ष नीचे से मोटा (३० फीट) एवं शंकाकार होता है। फल लौकी की तरह ९ से १२ इंच लंबे, ४ इंच व्यास के तथा कठोर कवच वाले होते हैं। इसका गूदा खट्टा होता है एवं बीज चमकीले वृक्काकार होते हैं। अत्यधिक स्वेद तथा ज्वर निवारण के लिये अफ्रीकी, इसके पत्तों का उपयोग करते हैं। फल का भी उपयोग ज्वर तथा प्रवाहिका में करते हैं। यह शीतवीर्य है तथा दाह, पित्त, वमन, अतिसार एवं विषम ज्वरों में लाभदायक है।

४६ म०-चांदकुड़ा। सं०-वल्कलवृक्ष। अं०-The Upas Tree. ले०-Antiaris toxicaria Lesch. (Fam. Moracae

इसके विशाल वृक्ष पश्चिम घाट के जंगलों में पाये जाते हैं। इसके काण्ड को क्षत करने से एक प्रकार का दुग्ध निकलता है जो बाद में जमकर गहरे बादामी रंग का हो जाता है। अल्प मात्रा में यह रक्तवह संस्थान को उत्तेजित करता है किन्तु अधिक मात्रा से हृदय पर इसका विषैला परिणाम होता है। कोंकण में इसके बीज का उपयोग ज्वर, उदरशूल एवं आमातिसार में करते हैं।

४७ हिं०-चाय। अं०-The tea plant. ले०-Camellia sinensis (Linn.) O. Kuntze (Fam. Theaceae; Ternstroemiaceae).



इस वृक्ष या झाड़ी की खेती आसाम, बंगाल, दक्षिण, उत्तर तथा अन्य पहाड़ी स्थानों पर की जाती है। कुछ इसे आसाम का आदिवासी मानते हैं तथा कुछ दक्षिण यूनान तथा इण्डोचीन के ऊपरी भाग का मानते हैं लेकिन इसका पेय के रूप में प्रचार चीन से प्रारम्भ हुआ है। इसके पत्ती को उबालकर प्रसिद्ध पेय बनता है जो कषाय, उत्तेजक तथा मूत्रल होता है।

४८ हिं०-चिलगोजा। सं०-निकोचक। ले०-Pinus gerardiana Wall. (Fam. Pinaceae).

इसके वृक्ष उत्तर पश्चिम हिमालय में ५८०० से १२००० फीट की ऊँचाई तक तथा बलूचिस्तान में पाये जाते हैं। इसका फल करीब १ इंच लम्बा, गोल, एक तरफ से कुछ चिपटा और भूरे रंग का होता है। ऊपर का छिलका पतला और दबाने से टूट जाता है जिसके अन्दर स्वादिष्ट मज्जा होती है। इसकी मज्जा स्निग्ध, गुरु, उष्ण, वातहर, पित्तवर्धक, बल्य, वृष्य एवं बृंहण है।

४९ सं०-चौहार, कीटमारी यवानी। हिं०-किरमानी अजवायन। अं०-Worm seed; Santonica. ले०-Artemisia maritima Linn. (Fam. Compositae).

इसकी छोटी झाडी प० हिमालय में कश्मीर से कुमाऊँ तक ७ से ९ हजार फीट की ऊँचाई तक पाई जाती है। यही भारतीय जाति है जिसमें Santonin पाया जाता है, जो केंचुवे की बिमारी में बहुत उपयोगी है।

५० हिं०-जलधनियां, देवकांडर, प्लेग की बूटी। सं०-काण्डीर (ध. नि.)। ले०-Ranunculus sceleratus Linn. (Fam. Ranunculaceae).

धनियां की तरह कटी पत्तीवाला यह क्षुप शीतकाल में नदी नालों के समीप पाया जाता है जिसमें फल पिप्पली के समान होने से इसे कुछ जल पिप्पली मानते हैं जो वास्तव में भिन्न द्रव्य है। यह उष्ण, स्फोटोत्पादक आर्तवजनन एवं पाचक है। इसको प्लेग की गांठों पर लगाते हैं तथा खिलाते हैं। पारद तथा अन्य धातुओं के मारण में इसका उपयोग करते हैं। (बिहार की वनस्पतियां, पृ० १, ठा० बलवन्त सिंह; सचित्र आयुर्वेद नवम्बर १९५९, श्री पं० भगीरथस्वामी)।

५१ हिं०-जलापा। अं०-Jalap Radix। ले०-Exogonium purga Benth. (Fam. Convolvulaceae).

इसकी बहुवर्षायु लता होती है जो मेक्सिकन एण्डिस की आदिवासी है। यद्यपि निलगिरी तथा पूना में इसको उगाने का प्रयत्न सफल कर रहा है तथा गंगा के ऊपरी पठारों के बगीचों में भी लगाई मिलती है तथापि उपयोग के लिये यह बाहर से मँगाई जाती है। इस लता के भौमिक काण्ड के पर्वों से कन्दवत् मूल निकलते हैं जिनका जलापा नाम से व्यवहार होता है। यह ४–१५ से. मी. लंबे, १० से. मी.

तक व्यास में, गहरे भूरे रंग के, टकुली के आकार के या कुछ चौपहल या कुछ नाशपाती के आकार के होते हैं। इनके आधे हिस्से में छोटे २ आड़े निशान होते हैं तथा दूसरे में लम्बाई में धारियां होती हैं। इनमें धूएँ जैसी गंध आती है। इनका स्वाद प्रारम्भ में मधुराभ किन्तु बाद में तीता होता है। इसका उपयोग तीव्र विरेचन के लिये करते हैं जिससे पानी जैसे पतले दस्त होते हैं।

गुलब्बास की जड़ को भी कहीं-कहीं गलती से जलापा कहा जाता है जिसमें की अल्प विरेचक गुण पाया जाता है। त्रिवृत् का उपयोग जलापा के स्थान पर किया जा सकता है जो अधिक उपयोगी है।

५२ हिं०-जहरमार। ले०-Phaseolus lunatus Linn. a variety.

जहरमार नाम से सफेद धारी युक्त काले रंग के बीज मिलते हैं जिनका बाह्य लेप शोथ में लाभदायक होता है। इसकी द्विवर्षायु बड़ी लता होती है जो देखने में सेम जैसी होती है किन्तु इसके पुष्प की आभ्यन्तर रचना में अन्तर होता है।

५३ हिं०-जहरमोहरा। सं०-नागपाषाण। अं०-Serpentine.

यह एक खनिज पत्थर है जो चीन, खता, तिब्बत, खुरासान तथा मध्य भारत में पाया जाता है। यह अनेक रंगों का होता है किन्तु जो पीताभ हरितवर्ण का होता है वह श्रेष्ठतर माना जाता है। यह खता पर्वतमाला से प्राप्त होने के कारण इसे जहरमोहरा खताई कहते हैं। यह मेध्य, हृद्य तथा विषघ्न है। विषों के दुष्प्रभाव को दूर करने के लिये यूनानी चिकित्सा में यह सर्वोत्तम माना जाता है। हृदय की धड़कन में इसकी पिष्टी देते हैं। दंशविषों पर इसका लेप भी किया जाता है।

५४ अ., फा-जूफा। अं०-Hyssop. ले०-Hyssopus officinalis Linn. ( Fam. Labiatae ).

यह बहुवर्षायु सुगंधि पौधा हिमालय में काश्मीर से कुमाऊं तक ८ से ११ हजार फीट की ऊंचाई तक पाया जाता है। इसमें पत्र रेखाकार-आयताकार, फूल नीलापन लिये बैंगनी एवं गहरे बादामी रंग के बीज होते हैं। इसका स्वाद कडवापन लिये कटु होता है। झूफा यबिस नाम से सीरिया एवं इरान से आयात होनेवाला द्रव्य गुणों में इसी के सदृश होता है। कुछ विद्वान् दोनों एक ही मानते हैं तथा कुछ भिन्न मानते हैं। यह कफनिःसारक, वातानुलोमक, शोथहर एवं कृमिघ्न है। इसका उपयोग प्रतिश्याय, कास, श्वास, कफज्वर, पाचन के विकार तथा कृमि में करते हैं। सलाद, सूप आदि को सुगन्धित करने के लिये भी इसका उपयोग करते हैं। मात्रा ३ से ६ माशा।

५५ अ०-जैतून का तेल। अं०-Olive oil. ले०-Olea europoea Linn. ( Fam. Oleaceae ).



इसके छोटे वृक्ष अमेरिका, आस्ट्रेलिया, भूमध्यसागरीय प्रदेश एवं बलूचिस्तान में पाये जाते हैं। इसके पके फलों से एक तेल प्राप्त होता है जो शुद्ध रूप में हलके पीले या हरिताभ पीले रंग का, हलकी गंध युक्त एवं स्वादहीन होता है। यह पोषक एवं मृदुसारक होता है। इसका बाह्य प्रयोग स्नेहन के लिये किया जाता है।

५६ अं०-डिजिटेलिस। ले०-Digitalis purpurea Linn. & D. lanata Ehrh. ( Fam. Scrophulariaceae ).

इन पौधों की खेती हिमालय में, विशेष रूप से कश्मीर में की जाती है। पाश्चात्य चिकित्सा में इसके पत्तों का हृदय रोग में बहुत प्रयोग किया जाता है। हृदय विकार के कारण शोथ आदि हों तो इससे लाभ होता है। इससे मूत्र की मात्रा बढ़ती है तथा हृदय की गति कम होकर उसे बल मिलता है।

५७ हिं०-तंबाखू। ले०-Nicotiana tabacum Linn. ( Fam. Solanaceae )

इस पौधे की खेती समस्त भारत में की जाती है। इसके पत्तों का सेवन अनेक प्रकार से व्यसन के रूप में किया जाता है। शोथ पर इसके पत्तों से सेंकने से लाभ होता है। दंतशूल में इसका मंजन उपयोगी है। इसका अत्यधिक सेवन हानिकर होता है।

५८ हिं०—तीखुर। सं०—तवक्षीर।

( क ) ले०-Maranta arundinacea Linn. (Fam. Marantaceae).
अं०-West Indian Arrowroot.

( ख ) ले०-Curcuma angustifolia Roxb. ( Fam. Zingiberaceae)
अं०-The East Indian Arrowroot; Travancore Starch.

तीखुर यह श्वेतवर्ण का अत्यंत सूक्ष्म चूर्ण होता है जिसके कण आपस में चिपके रहने के कारण यह विभिन्न आकार के छोटे-छोटे ढेलों के रूप में मिलता है। रासायनिक दृष्टि से यह एक प्रकार का स्टार्च होता है।

वास्तविक तीखुर प्रथम पौधे म० अरुण्डिनेसिया से प्राप्त होता है। यह पौधा यद्यपि उष्णकटिबंधीय अमेरीका का आदिवासी है तथापि उत्तरप्रदेश, बिहार, उड़ीसा, बंगाल, आसाम तथा केरलमें होता है। इसका पौधा सीधा, पतला, ०·६ से १.८ मीटर ऊँचा; पत्ते बड़े, अंडाकार-भालाकार; पुष्प श्वेत गुच्छों में; एवं राइजोम (कन्द) बड़े, मांसल, बेलनाकार अभिलटवाकार होते हैं। नील या पीत कन्द भेद से इसके दो प्रकार पाये जाते हैं जिसमें नीले कंदसे अधिक तीखुर निकलता है। इसके अन्य भेद भी पाये जाते हैं। इन्हीं कंदों को कूटकर स्टार्च निकालते हैं। शुष्क अवस्था में इसमें न तो कोई गंध रहती है न स्वाद, किन्तु आर्द्र करने पर या पकाने पर इसमें हलकी गंध आती है। इसके कण १०—५० माइक्रोन बड़े एवं अंडाकार या दीर्घवृत्ताकार होते हैं।

दूसरा पौधा क० अँगस्टिफोलिया जिससे भी तीखुर प्राप्त होता है, मध्यभारत, बंगाल, बंबई, मद्रास तथा हिमालय के कुछ निचले भागों में होता है। इससे जो तीखुर प्राप्त होता है उसके कण कुछ बड़े, लंबाई लिये नाशपाती के आकार के या मुद्गराकार होते हैं। बजार के तीखुर में टेपिओका, शकरकंद, चावल तथा आलू आदि से प्राप्त स्टार्च की भी मिलावट रहती है।

तीखुर बच्चों के लिये या रोगियों के लिये सुपाच्य खाद्य के रूप में प्रयोग में लाया जाता है। स्टार्च के रूप में भी इसका उपयोग किया जाता है।

५९ सं०–तुवरक। ले०–Hydnocarpus wightiana Blume; Syn. H. laurifolia ( Dennst. ) Sleumer. ( Fam. Flacourtiaceae ).

दक्षिण में इसका वृक्ष पाया जाता है। इसका एक भेद H. kurzii ( King. ) Warb; Syn. Taraktogenos kurzii King. आसाम तथा चटगांव में पाया जाता है जो गुणकर्म में पहले के समान ही है। चिकित्सा में उपर्युक्त दोनों के बीजों का तेल उपयोग में लाया जाता है जिनमें से प्रथम के तेल को विशेषकर हिड्नोकार्पस आइल ( Hydnocarpus Oil ) तथा द्वितीय के तेल को चौलमोगरा तेल ( Chaulmoogra Oil ) कहते हैं। इन्हीं वृक्षों से मिलता हुआ एक अन्य वृक्ष Gynocardia odorata R. Br. आसाम की तरफ पाया जाता है जिसके बीजों के तेल को भी चौलमौगरा तेल कहते हैं यद्यपि इसमें कुष्ठघ्न गुण नहीं हैं।

उपर्युक्त प्रथम दो वृक्षों के बीज तथा बीज तैल का कुष्ठ एवं अन्य चर्मरोगों में बाह्याभ्यंतर प्रयोग किया जाता है। इसे ५ से ६० बूँद क्रमशः बढाते हुये मक्खन, मलाई या घी के साथ देते हैं। सुश्रुत में इस वृक्ष का विस्तार से वर्णन है ( चि० अ० १३–२०; सू० अ० ४५-१२२ )। उस वर्णन से ऐसा मालूम होता है कि यह ठीक समुद्री किनारों पर होता है। एक तुवर नाम का अन्य वृक्ष Avicennia officinalis Linn. समुद्री किनारों पर पाया जाता है जिसके शास्त्रीय तुवरक होने की संभावना व्यक्त की गई है।

६० सं०–तृणकान्त। फा०, हिं०–कहरुवा। अं०–Amber. ले०–Pinus succinifera ( Goppert. ) Cornw.

अतिप्राचीन काल के उपर्युक्त वृक्ष की यह अश्मीभूत राल है जो कोयले आदि की खानों में पाई जाती है। पूर्व एशिया तथा बर्मा में यह अधिक पाया जाता है। आसाम तथा कच्छ में भी यह मिलता है। यह हलके पीले या रक्ताभवर्ण का, कुछ पारभासक एवं एक विशिष्ट कोण से देखने से हलका हरा दिखलाई देता है। इसे रगड़ने से इस पर चमक आती है, हलकी सुगंध निकलती है एवं विद्युतसंचार होने के कारण छोटे घासफूस या कागज के टुकड़ों को यह आकर्षित कर लेता है। इसीसे इसे कहरुवा ( कह = सूखीघास, रुबा = खींचनेवाला ) कहते हैं।



इसको सिगरेट पीने की नली, कर्णाभूषण आदि बनाने के काम में लाया जाता है। यह रूक्ष, स्तम्भन एवं हृद्य है। इसका उपयोग हृदय रोग एवं रक्तपित्त में करते हैं।

मात्रा—पिष्टी १–२ माशे।

६१ सं०–तैलपत्र, सुगंधपत्र। ले०–Eucalyptus globulus Labill. ( Fam. Myrtaceae ).

इसके वृक्ष लगाये हुए पाये जाते हैं। इसके पत्तों से एक स्वच्छ या हलका पीताभ उड़नशील तैल प्राप्त किया जाता है। इसमें कर्पूराभ गंध तथा स्वाद होता है। यह तेल प्रतिदूषक, दुर्गन्धनाशक एवं ज्वरशामक होता है। खांसी, जुकाम तथा दमा आदि में इसे सूंघने को दिया जाता है। आमवातादि में अन्य तेलों के साथ इसे मिलाकर मालिश करते हैं। जीर्ण कफविकारों में इसे या इसके पत्तों का फांट देते हैं। इसका मलहम जले हुए पर लगाते हैं।

६२ हिं०–तोदरी। ले०–Lepidium iberis Linn. ( Fam. Cruciferae ).

इसके कंटीले पौधे दक्षिण यूरोप से साइबेरिया तक होते हैं। इसके बीज फारस से आते हैं। रंग भेद से यह लाल, पीली तथा सफेद मानी जाती है जो संभवतः नीचे लिखे हुए पौधों के बीज हैं। इनमें पीली अच्छी मानी जाती है। इसके दाने चिपटे, सूक्ष्म तथा मसूर की तरह होते हैं एवं जल में डालने पर लुआबदार हो जाते हैं। यह वाजीकर, स्तन्यजनन, पौष्टिक, मूत्रजनन तथा कफनिःसारक है। इसका लेप शोथहर है। श्वासनलिका शोथ में इसका क्वाथ देने से कफ निकलकर ज्वर कम हो जाता है। बीजों के तेल की संधिशोथ में मालिश की जाती है। मात्रा—½–१ तोला।

६३ हिं०–तोदरी सफेद। ले०–Mathiola incana R. Br. ( Fam. Cruciferae ).

बागों में इसके पौधे लगाये जाते हैं। इसके बीज तोदरी की तरह ही उपयोग में आते हैं।

६४ हिं०–तोदरी सुर्ख। ले०–Cheiranthus cheiri Linn. ( Fam. Cruciferae ).

दक्षिण यूरोप का आदिवासी यह पौधा बागों में लगाया मिलता है। इसके बीजों का तोदरी की तरह ही उपयोग होता है। इसके अतिरिक्त इसके पुष्प हृद्य एवं आर्तवजनन हैं तथा पक्षाघात एवं नपुंसकता में दिये जाते हैं।

६५ हिं०-दरियाई नारियल। अं०-Sea Coconut Palm; Double Coconut Palm. ले०-Lodoicea maldivica ( Poir ) Pers. ( Fam. Palmae )

यह नारियल की जाति का ऊंचा वृक्ष बागों में लगाया हुआ मिलता है। इसके फल बहुत बड़े तथा वजनी होते हैं। बाजार में इसकी सूखी मज्जा के सफेद वर्ण के बेडौल टुकड़े मिलते हैं जो बहुत कठिन होने से गुलाबजल में घिसकर प्रयोग में लाये जाते हैं। विसूचिका में तथा अफीम, बछनाग आदि की विषाक्तता में इसे जहरमोहरा खताई के साथ देते हैं। दंशविष पर इसका लेप लाभदायक है। इसका जल पित्त-शामक तथा अम्लता को कम करता है। मात्रा—४ से ८ रत्ती।

६६ अं०-दरूनज अकरबी। ले०-Doronicum pardalianches Linn. ( Fam. Compositae ).

इसके पौधे यूरोप में होते हैं। यह देखने में बिच्छू ( अकरब ) जैसी होने के कारण इसे दरूनज अकरबी कहा जाता है। यह बाहर से मटियाली और भीतर से श्वेत होती है। यह सभी हृद्रोगों की प्रधान औषधि मानी जाती है। पक्षवध आदि वातरोग, गर्भाशय शूल तथा विषप्रभाव में भी इसका उपयोग करते हैं। दंशविष में इसका लेप भी किया जाता है।

भारतवर्ष में इसकी निम्न जातियां पाई जाती हैं जिन्हें भी इसी नाम से व्यवहार किया जाता है।

( क ) D. hookeri Hook. f.—यह सिक्किम हिमालय में लाचेन तथा टुंगु में १२-१४ हजार फीट की ऊंचाई तक पाया जाता है। इसकी जड़ सुगंधि तथा बल्य होती है। ( ख ) D. roylei DC. यह पश्चिम हिमालय में कश्मीर से गढ़वाल तक, १० हजार फीट की ऊंचाई तक पाया जाता है। अधिक ऊंचाई पर चढ़ते समय चक्कर आदि न हो इसके लिये इसका उपयोग करते हैं।

६७ सं०-दुग्धफेनी। हिं०-दुधल, कानफूल। अं०-Dandelion Root. ले०-Taraxacum officinale Weber ( Fam. Compositae ).

दुग्धयुक्त बहुवर्षायु यह यूरोपीय पौधा हिमालय में तथा नीलगिरि पर पाया जाता है। इसकी जड़ का उपयोग किया जाता है। यह ६ से १५ से. मी. लंबी, ५-१५ मि. मी. मोटी, गोल या कुछ चिपटी, भूरापन लिये काली या पीताभ भूरी, लंबाई में सिकुड़नदार एवं मूलों के चिह्नों से युक्त, गंधहीन, स्वाद में कड़वी एवं आसानी से टूटनेवाली होती है। यह तिक्त, मूत्रजनन एवं सौम्यविरेचक है। यह यकृत् के लिए उत्तेजक होने के कारण इसका कामला, यकृत्वृद्धि, कोष्ठबद्धता एवं कुपचन आदि रोगों में प्रयोग करते हैं। कासनी तथा अन्य मूलों की इसमें मिलावट की जाती है। मात्रा—४ से १२ माशा।



६८ सं०-निर्विषा (षी)। हिं०-निर्विषी, जद्वार। ले०-Delphinium denudatum Wall. ( Fam. Ranunculaceae ).

इसके पौधे पश्चिम हिमालय में कुमाऊं से कश्मीर तक ८ से १२ हजार फीट की ऊंचाई तक होते हैं। वत्सनाभ आदि में इसके जड़ की मिलावट की जाती है। हकीम इसका अधिक व्यवहार करते हैं। इसकी जड़ तिक्त, विषघ्न, रसायन, बल्य, वेदना शामक, श्वयथुविलयन तथा लेखन है। इसका प्रयोग आंतरिक विष, दंशविष, वातरोग, कफरोग, चर्मरोग आदि अनेक रोगों में किया जाता है। दंतशूल में इसे लगाते हैं।

६९ हिं०-पपीता। सं०-एरण्डकर्कटी, मधुकर्कटी, गोपालकर्कटी। ले०-Carica papaya Linn. ( Fam. Caricaceae ).

उष्णकटिबंधीय मध्यअमेरिका का आदिवासी यह छोटा वृक्ष अब समस्त भारत में लगाया हुआ पाया जाता है। इसके पके फलों को खाया जाता है। इसके कच्चे फल तथा अन्य भागों से एक प्रकार का दूध निकाला जाता है जिससे पपेन ( Papain ) नामक एक पाचक किण्व प्राप्त किया जाता है। जिनमें प्रभूजिन जातीय खाद्य द्रव्यों का पाचन ठीक न होता हो उनको इसे देते हैं। इसका क्षीर मुहांसे आदि दूर करने के लिये लगाते हैं।

७० हिं०-पिपरमिन्ट। अं०-Peppermint. ले०-Mentha piperata Linn. ( Fam. Labiatae ).

यह पुदीने की जाति का बहुवर्षायु, गंधयुक्त विदेशी क्षुप है जो काश्मीर, निलगिरी, देहरादून, दिल्ली तथा बागों में लगाया हुआ पाया जाता है। इससे पिपरमिंट तेल प्राप्त होता है जिसको अत्यधिक शीत करने से उसका सत्त्व मेंथाल ( Menthol ) अलग हो जाता है जो तेल में करीब ५०-५५% होता है। इसका पौधा, तेल या सत्त्व दीपन, पाचन एवं वातानुलोमक है तथा आध्मान, हृल्लास एवं वमन में दिया जाता है। इसके तेल का उपयोग औषधियों को सुगंधित करने के लिये करते हैं। यह प्रतिदूषक एवं स्थानिक संज्ञाहर होने से दन्तशूल, आमवात, नाडीशूल एवं शिरःशूल आदि में इसे लगाते हैं। प्रतिश्यायादि में इसे सूंघने को देते हैं।

७१ म०-पिसा। उरि०-क्षारचंपा। ले०-Actinodaphne hookeri Meissn. ( Fam. Lauraceae ).

इसके मध्यम आकार के वृक्ष महाराष्ट्र में माथेरान तथा महाबलेश्वर में पाये जाते हैं। उड़ीसा के पूर्वतटीय जंगलों में भी यह होता है। इसके बीज की मज्जा से लारिक एसिड ( Lauric acid ) प्राप्त किया जाता है जिसका उपयोग अपस्मारक के निर्माण में किया जाता है। इसके पत्तों का हिम मधुमेह तथा मूत्ररोगों में दिया जाता है। बीजों का तेल मोच आदि पर लगाते हैं।

७२ हिं०-पिस्ता । सं०-मुकूलक । ले०-Pistacia vera Linn. ( Fam. Anacardiaceae ).

इस सुप्रसिद्ध मेवे के वृक्ष की सीरिया, फिलस्तीन एवं फारस में उपज की जाती है। इसके पत्तों पर एक कीटगृह बनता है जिसे पिस्ते का फूल ( गुले पिस्ता, बुजगुंज ) कहते हैं। यह एक तरफ से गुलाबी, दूसरी तरफ से कुछ पीताभ श्वेत, स्वाद में खट्टे एवं कषाय होते हैं। बीजों के छिलके को पोस्ते पिस्तः (पोस्त बेहँ पिस्तः) कहते हैं। पिस्ता गुरु, स्निग्ध, मधुर, उष्ण, बल्य, बृंहण, वृष्य, वातहर तथा कफपित्तवर्धक होता है (चरक सू० अ० २७; सु० सू० अ० ४६)। पिस्ते का फूल खाँसी मे उपयोगी है। बीजों का छिलका अतिसार, हल्लास एवं वमन में देते हैं।

७३ हिं०-पुदीना । स०-पूतिहा । अं०-Spearmint ले०-Mentha spicata Linn. & other sp. ( Fam. Labiatae ).

इस पौधे को बागों में लगाते हैं तथा हिमालय के पहाड़ों पर यह वन्य स्वरूप में भी पाया जाता है। इसकी कई जातियां होती हैं जिनका पुदीना नाम से उपयोग होता है। यह दीपन, पाचन, उद्वेष्ठननिरोधी, मूत्रल एवं आर्तवजनन है। इसका उपयोग अजीर्ण, वमन, शूल, आध्मान, कफज्वर एवं कृमि में करते हैं।

७४ अ०-फरासियून । हि०—पहाड़ीगंदना । अं०-Horehound, Hoarhound. ले०-Marrubium vulgare Linn. ( Fam. Labiatae ).

इसके ऊंचे, बहुवर्षायु पौधे कश्मीर में ५-८ हजार फीट की ऊंचाई तक एवं उ० प० सीमान्त प्रदेश तथा बलूचिस्तान में पाये जाते हैं। युरोप तथा अमेरीका में भी इसकी उपज की जाती है। इसके पत्ते मोटे, रोमश, दीर्घवृत्ताकार-अंडाकार; पुष्प छोटे, श्वेत, गुच्छों में; एवं फल अत्यन्त छोटे होते हैं। इसमें हलकी, कुछ कस्तूरी जैसी गंध होती है तथा इसका स्वाद चरपरा, कड़वा किन्तु सुगन्धित होता है। इसकी सूखी पत्तियां तथा पुष्पित अग्र का व्यवहार किया जाता है। यह तिक्त, कफनिःसारक, मूत्रल एवं वातानुलोमक है। इसका फांट या अन्य औषधों के साथ इसका घनसत्व प्रतिश्याय, कास तथा अन्य कफजविकारों में दिया जाता है।

७५ हिं० बनफ्शा । ले०-Viola odorata Linn. ( Fam. Violaceae ).

इसके क्षुप कश्मीर मे ५ से ६ हजार फीट की ऊंचाई तक पाये जाते हैं। यह अन्य पर्वतीय स्थानों में लगाये हुए भी मिलते हैं। इसकी अन्य कई जातियां ( Species ) होती हैं जो अन्य प्रान्तों में भी पाई जाती हैं। केवल फूलों को गुलबनफ्शा कहा जाता है। ईरान से भी यह आता है। इसका क्षुप छोटा होता है। पत्ते हृदयाकृति, रोमश एवं ब्राह्मी की तरह दिखलाई देते हैं। फूल बैंगनी नीले रंग के तथा सुगंधयुक्त होते हैं जो पुराने होने पर भूरे या पीताभ श्वेत हो जाते हैं।



यह ज्वरघ्न, स्वेदजनन, कफनिःसारक एवं पित्तशामक है। प्रतिश्याय आदि कफज रोगों में इसका हिम या फांट देते हैं। इसका गुलकन्द विबंध में देते हैं। इसकी जड़ वामक होती है।

७६ अ०-बलसाँ । हब्बुल्बलसां, तुख्मबलसाँ ( फल )। ले०-Commiphora opobalsamum ( Linn. ) Engl. ( Fam Burser ceae ).

इसके वृक्ष लालसागर के दोनों तरफ, अबसीनियां, अरब, अदन तथा यमन में पाये जाते हैं। इसको चीरा लगाने से एक पीला राळदार तैलीय पदार्थ प्राप्त होता है। यह सुगंधि एवं तिक्त होता है। इसके फल काली मिर्च की तरह किन्तु कुछ लम्बोतरे, बड़े एवं रंग में कुछ पीलापन लिये काले से लाल होते हैं। यह स्वाद म कड़वे होते हैं। इनकी मींगी श्वेत होती है। इसके फल दीपन, कफनिःसारक एवं आर्तवजनन होते हैं। इसका निर्यास ग्राही, स्नेहन, कफनिःसारक एवं व्रणशोधन होता है। इसका उपयोग पूयमेह, कफरोग तथा वातरोगों में करते हैं।

७७ हिं०-बहमन सफेद । ले०-Centaurea behen Linn. ( Fam. Compositae ).

इस पौधे की जड़ फारस से आती है। इसको यूनानी हकीम बृंहण तथा वाजीकर रूप में प्रयोग करते हैं। एक अन्य बहमन सुर्ख का भी इसी तरह उपयोग किया जाता है।

७८ हिं०-बादावर्द । सं०-ब्रह्मदण्डी । ले०-Amberboa divaricata Kuntze ( Fam. Compositae ).

नदियों के किनारे रेतीली भूमि में और ऊसर भूमि में इसके क्षुप अनेक स्थानों में पाये जाते हैं। यह जमीन पर फैलने वाला, वर्षायु तथा दृढ क्षुप होता है जिसके काण्ड द्विविभक्त नालीदार और कोनकार होते हैं। पत्ते भिन्न-भिन्न प्रकार के, अवृन्त, १-२ इञ्च या अधिक लंबे, आयताकार या अभिलट्वाकार, अखण्ड, दन्तुर या खण्डित और खण्ड प्रायः लहरदार धार वाले होते हैं। मुण्डक लगभग १ इञ्च लंबे, बोतल के आकार के, जामुनी रंग के एवं कंटकित होते हैं। इस कुल की Tricholepis glaberrima DC. तथा अन्य वनस्पतियों को भी ब्रह्मदण्डी कहा जाता है। इनमें से प्रथम बल्य एवं सारक है तथा इसका ज्वर, कास आदि में उपयोग करते हैं। द्वितीय का उपयोग श्वित्र, चर्मरोग तथा मज्जातन्तु दौर्बल्य में एवं वृष्य रूप में किया जाता है।

७९ हिं० बादियाण रूमी, सौंफ, अनीसून। अं०-Anise. ले०-Pimpinella anisum Linn. ( Fam. Umbelliferae ).

उत्तरपश्चिम भारत, उत्तरप्रदेश, पंजाब तथा उड़ीसा में इसकी खेती की जाती है। यह सौंफ से छोटे, उससे अधिक हरे, पीताभ श्वेत या कृष्णाभ पीत होते हैं।

यह स्वाद में कुछ कड़वे तथा इनमें विशिष्ट गंध होती है। यह दीपन, वातानुलोमक एवं मूत्रल हैं। इनका उपयोग शूल, आध्मान एवं कफविकारों में करते हैं। इनके तेल का भी उपयोग इसी प्रकार किया जाता है।

एक अन्य बादियान खताई नामक फल चीन तथा हिन्दचीन से आते हैं। यह हिं०-अनसफल; अं०-Star Anise of China; ले०-Illicium verum Hook. f. ( Fam. Magnoliaceae ) हैं। इसका बादियान रूमी की तरह उपयोग होता है। इसके ताजे फलों से भी सुगंधि तैल प्राप्त होता है जिसका सौंफ एवं बादियाण के तेल की तरह ही उपयोग किया जाता है।

८० हिं०, पं०, बं०-बाबूना। ले०-Matricaria chamomilla Linn. ( Fam. Compositae ).

इसके पौधे पंजाब एवं गंगा के ऊपरी मैदान में पाये जाते हैं। यह यूरोप में भी होता है। इसके पीले, सेवती के समान सुगन्धित एवं कड़वे पुष्पों का उपयोग किया जाता है। यह विदेशी द्रव्य ( अं० ) कॅमोमाईल ( Chamomile ), ले०-Anthemis nobilis Linn. का अच्छा प्रतिनिधि है जो अब अपने यहां भी बागों में लगाया या बाहर से आया हुआ मिलता है एवं जिसमें श्वेत रंग के दोहरे तथा बड़े फूल होते हैं।

यह श्वयथु विलयन, वातानुलोमक, उत्तेजक, पौष्टिक तथा अधिक मात्रा में वामक है। सामान्य दौर्बल्य, अपचन, आनाह, अपतंत्रक, ज्वर एवं आर्तव विकारों में इसका फांट देते हैं। आमवात तथा संधिशोथ में इसका तेल मालिश करते हैं। मात्रा-१ से ४ माशा।

८१ हिं०-बिरंजासिफ, बरंजासिफ। बंब०-रोजमरी। अं०-Milfoil, Yarrow, ले०-Achillea millefolium Linn. ( Fam. Compositae ).

छत्तेदार फूलवाले इसके बहुवर्षायु क्षुप प० हिमालय में ३५००-१२००० फीट की ऊंचाई तक, विशेषकर सिमला के आस-पास पाये जाते हैं। युरोप में इसका क्वाथ बल्य, उत्तेजक तथा वातानुलोमक रूप में प्रयोग करते हैं। यह स्वेदजनन बल्य, आर्तवजनन एवं मूत्रजनन है। इसमें एक प्रकार का नीले रंग का सुगंधि तैल पाया जाता है।

८२ हिं०-बिही। अं०-Quince. ले०-Cydonia oblonga Mill. ( Fam. Rosaceae ).

इसके छोटे वृक्ष उत्तर पश्चिम सीमान्त प्रदेश, पंजाब, काश्मीर तथा निलगिरि पर लगाये हुये मिलते हैं। इसके सेव जैसे सुनहले फल होते हैं जिनको पकाकर खाते हैं। इन फलों के अदर पांच विभाग होते हैं जिसके प्रत्येक भाग में २ खड़ी



कतारों में गोंद से आवृत अनेक बीज होते हैं। यह ६ से ७ मि० मी० लंबे, एक तरफ से कुछ उन्नतोदर एवं रक्ताभ होते हैं। इन्हें जल में भिगाने से लुआब निकलता है। यह बाजार में बिहीदाना के नाम से बिकते हैं। इसके फल बल्य, हृद्य, ग्राही एवं मूत्रल हैं। बीज अतिसारादि में देते हैं। बीजों को गरम जल में डालने से जो लुआब निकलता है वह शीत, ग्राही, स्नेहन, कफघ्न तथा बल्य होता है एवं इसका खांसी तथा अतिसार में प्रयोग करते हैं। व्रण विशेषकर दग्धव्रण पर इसे लगाते हैं।

८३ पं०-बेबरंग, कक्षुम। ले०-Myrsine africana Linn. ( Fam. Myrsinaceae ).

इसकी झाड़ी या छोटे वृक्ष कश्मीर से नेपाल तक तथा खासिया पहाड़ों पर पाये जाते हैं। इसके फल छोटे, गोल, मांसल तथा गहरे बैंगनी रंग के होते हैं तथा प्रत्येक फल में एक बीज होता है। वास्तविक वायविडंग की तरह इसका उपयोग स्फीतकृमि में लाभदायक होता है। जलोदर तथा शूल में सौम्यविरेचक की तरह इसका उपयोग करते हैं। चर्मरोगों में इससे बना मलहम लाभदायक माना जाता है।

८४ सं०-भव्य। हिं०-चाल्ता। ले०-Dillenia indica Linn. ( Fam. Dilleniaceae ).

इसके सुन्दर वृक्ष कुमाऊं एवं गढ़वाल से लेकर पूर्व में आसाम, बंगाल एवं दक्षिण तथा मध्यभारत में पाये जाते हैं। इसकी सुन्दर दन्तुर पत्तियों तथा श्वेत सुगन्धित फूलों के लिये इसे बागों में भी लगाते हैं। इसके फल ३ से ५ इञ्च व्यास के होते हैं। फलों का आवरण इसके ५ बाह्य दलों से बना होता है जिसके अन्दर गूदे में लिपटे अनेक बीज होते हैं। खटाई के लिये इनका प्रयोग करते हैं। इसकी पत्ती तथा छाल ग्राही होती है। ज्वर तथा खांसी में फल का शरबत देते हैं। इससे शौच भी साफ होता है। यह मधुर, अम्ल, कषाय, शीत, हृद्य, विष्टम्भि, मुखशोधक, पित्तकफवर्धक, गुरू एवं ग्राही होता है ( च. सू. अ. २७; सु. सू. अ. ४६ )।

८५ ने०-मचिनो। हिं०-गंधपूरा का तेल। अं०-Oil of Wintergreen. ले०-Gaultheria fragrantissima Wall. ( Fam. Ericaceae ).

इसके पौधे नेपाल से भूटान तक, खासिया पर्वत, पश्चिमघाट, नीलगिरी, पुल्नी तथा ट्रावनकोर में पाये जाते हैं। इसमें एक उड़नशील तेल पाया जाता है। यह रंगहीन या हलका पीला तथा विशिष्ट गंध एवं स्वाद युक्त होता है। इसके तेल का आमवातादि में बाह्याभ्यन्तर प्रयोग किया जाता है। इसमें के मेथिल सॅलिसिलेट के कारण यह लाभदायक होता है। चीनी में मिलाकर इसका आंतरिक प्रयोग करते हैं। इससे अंकुश कृमि में भी लाभ होता है। मात्रा-५ से १५ बूंद।

८६ हिं०–ममीरा, ममीरी। सं०–महातिक्त, पीतमूला, हेमतन्तु। आसाम–मिष्मीतीता। अँ०–Gold thread। ले०–Coptis teeta Wall. ( Fam. Ranunculaceae ).

इसका क्षुप आसाम की उत्तरी सीमा पर मिष्मी पर्वतों पर पाया जाता है। चीन में इसकी खेती की जाती है और 'चीनी ममीरा' अत्युत्तम माना जाता है। इसके मूल ( राइजोम ) का उपयोग करते हैं। ये १ से २ इञ्च लंबे, झुर्रीदार, गोल, पत्र एवं मूल के चिह्नों से गांठदार, बाहर से भूरापन के लिये पीत, तोड़ने पर पीत या सुवर्ण पीत तथा चक्राकार, अल्प गंध युक्त एवं चबाने पर अत्यन्त कड़वे तथा लाला को पीत कर देते हैं। कुटकी तथा पियारांगा में इसकी मिलावट की जाती है। यह तिक्त पौष्टिक, दीपन, पाचन, नेत्र्य एवं बल्य है। सभी प्रकार के नेत्र रोगों में इसका बाह्य प्रयोग किया जाता है। साधारण दौर्बल्य, विषमज्वर तथा कुपचन में इसका आंतरिक प्रयोग करते हैं। चीन में इसे मधुमेह में लाभदायक माना जाता है।

८७ हिं०–माजूफल। सं०–मायाफल। ले०–Quercus infectoria Oliv. ( Fam. Fagaceae ).

यह ग्रीस, एशिया माइनर तथा सीरिया में होता है। एक प्रकार के कृमि Cynips tinctoria Oliver द्वारा उत्पन्न यह एक प्रकार का कीटगृह है जो उपर्युक्त वृक्षों की नवीन शाखाओं पर पाया जाता है। यह गोल, १०–२५ मि. मी० व्यास का, वजनदार, गोल उभारों से युक्त तथा आधार की तरफ छोटे से डंठल से से युक्त होता है। इसका रंग प्रारम्भ में नीलाभ धूसर, फिर हरा तथा अन्त में जब इसमें से छेद करके भीतर का कृमि बाहर निकल जाता है तब श्वेत हो जाता है। हरा अच्छा माना जाता है। इसका स्वाद कषाय होता है। यह कषाय, स्तम्भन, कफघ्न एवं विषघ्न है। इसका उपयोग अतिसार, प्रवाहिका तथा विषाक्तता में करते हैं। दंत मंजनों में इसे डालते हैं तथा व्रण पर इसका बाह्य प्रयोग करते हैं जिससे रक्तस्राव रुकता है।

८८ हिं०–मिरचा ( लाल, हरी )। बं०–लंका। सं०–कटुवीरा। ले०–Capsicum annum Linn. ( Fam. Solanaceae ).

उष्ण कटिबन्धीय अमेरिका के इस आदिवासी पौधे की अब भारत में व्यापक खेती की जाती है। इसके अनेक प्रकार पाये जाते हैं। मसाले के रूप में इसका बहुत उपयोग किया जाता है। यह वातानुलोमक तथा त्वग् राग कारक है। शिथिलता प्रधान कुपचन में इसका उपयोग अच्छा होता है। वातिक पीडा आदि में प्रतिक्षोभक के रूप में इसका बाह्यप्रयोग करते हैं।



८९ सं–मुंजातक। हिं०–सालममिश्री, पंजासालब। Eulophia campestris Wall. ( Fam. Orchidaceae ).

यह सभी मैदानी भागों में होता है। इसका पौधा छोटा होता है। इसमें दो रेखाकार, २५–४० से. मी. लंबे पत्र तथा गुलाबी धारीयुक्त पीत या हरे पुष्प होते हैं। कंद पंजा की तरह होता है। मुंजातक शीत, गुरु, मधुर, स्निग्ध, तर्पण, बृंहण, परम वृष्य एवं वातपित्तहर है ( च. सू. अ. २७ )। सालब नाम से या इसके प्रतिनिधि रूप में इसकी अन्य जातियों से तथा निम्न अन्य क्षुपों का भी उपयोग करते हैं।

क. Orchis latifolia Linn. ( Fam. Orchidaceae ); हिं०–सालब। यह हिमालय में ८ से १२ हजार फीट की ऊंचाई पर होता है। इसके कंद ग्राही एवं कफनिःसारक होते हैं।

ख. O. laxiflora Lam.; ग. O. mascula Linn.; हिं०–सालब मिश्री। यह यूरोप, अफगानिस्तान एवं फारस आदि में होते हैं। इनके कंद भी ग्राही, कफनिःसारक एवं बल्य होते हैं।

घ. Allium macleanii Baker. ( Fam. Liliaceae ); हिं०–बादशाही सालब। यह अफगानिस्तान से आता है।

९० सं०–मुक्तवर्चा। हिं०–कुप्पी, आमाभाजी। ले०–Acalypha indica Linn. ( Fam. Euphorbiaceae ).

इसके पौधे सभी मैदानी भागों में पाये जाते हैं। पत्ते लंबे वृन्तयुक्त होते हैं तथा कोणपुष्पक पर्णतुल्य तथा कुप्पीसदृश नतोदर होते हैं जिसमें फल छिपा रहता है। इसके पंचांग का उपयोग किया जाता है। यह कफघ्न, वामक, स्रंसन, कृमिघ्न, मूत्रल एवं त्वग्दोषहर है। आंव में इसकी भाजी खिलाते हैं जिससे इसे आमाभाजी भी कहा जाता है। इसका ताजा स्वरस बच्चों में वमन कराने के लिये देते हैं। इसका क्वाथ अच्छा मृदुविरेचन है।

९१ हिं०–मेरडु। ले०–Polygala chinensis Linn. ( Fam. Polygalaceae ).

इसके पौधे प्रायः सभी स्थानों पर पाये जाते हैं। इसके मूल में सॅपोनिन होने के कारण इसका सेनेगा ( Senega ) की तरह उपयोग किया जाता है। कफनिःसारक रूप में इसका उपयोग खांसी दमा आदि में करते हैं। अधिक मात्रा से वमन तथा विरेचन होता है।

९२ हिं०–मैदालकड़ी। ले०–Litsea glutinosa ( Lour. ) C. B. Robins ( Fam. Lauraceae ).

इसकी सदाहरित झाड़ी या वृक्ष सभी स्थानों पर पाये जाते हैं। इसकी पत्तियों में एक विशेष प्रकार की सुगंध पाई जाती है। इसकी छाल का उपयोग अतिसार, प्रवाहिका तथा कफ-वात विकारों में करते हैं। मोच, चोट, रक्तस्राव तथा अन्य शोथ पर इसका बाह्यलेप करते हैं।

९३ हिं०–रतनजोत। रतनजोत नाम से कई वनस्पतियों का उपयोग किया जाता है। तेल आदि को रंगने के लिये इनका अधिक उपयोग करते हैं। निम्नलिखित द्रव्य रतनजोत नाम से लिये जाते हैं:—

(क) अं०–Alkanet Root. ले०–Alkanna tinctoria Tanscher (Fam. Boraginaceae).

इसके पौधे द० यूरोप, हंगरी एवं टर्की में होते हैं। इसकी जड़ का उपयोग आधुनिक औषधनिर्माण में, तैल मलहम आदि को लाल रंगने के लिये किया जाता है।

(ख) ले०–Onosma bracteatum Wall. (Fam. Boraginaceae).

इसके पौधे कश्मीर, कुमाऊं तथा बलूचिस्तान में पाये जाते हैं। इसका उपयोग अलकानेट के प्रतिनिधि रूप में किया जाता है।

(ग) हिं०–लालजड़ी। ले०–Geranium wallichianum D. Don (Fam. Geraniaceae).

यह रोमश वनस्पति कुरमघाटी, कश्मीर, सिमला तथा कुमाऊं में पाई जाती है। इसकी जड़ मोटी लाल, पत्ते करतलाकार विभक्त एवं पुष्प नील-बैंगनी रंग के होते हैं। इसका उपयोग दंतशूल में किया जाता है तथा यह रक्तसंग्राहक होती है।

(घ) ले०–Clausena pentaphylla (Roxb.) DC. (Fam. Rutaceae).

इसके तीक्ष्णगंध, ३–४ फीट ऊंचे क्षुप कुमाऊं के निचले क्षेत्र, नेपाल, सिक्कम, अवध के जंगली भाग तथा चंपारन में पाये जाते हैं। इसकी छाल का उपयोग पशुओं के घाव में करते हैं।

(ङ) ले०–Potentilla nepalensis Hook. (Fam. Rosaceae).

इसके पौधे हिमालय में मुरी तथा कश्मीर से कुमाऊ तक ५ से ८ हजार फीट की ऊंचाई तक पाये जाते हैं। इसकी राख दुग्धव्रण में लगाई जाती है।

९४ सं०–रुदन्ती। हिं०–रुद्रवन्ती। ले०–Cressa cretica Linn. (Fam. Convolvulaceae).

इसका चने की तरह छोटा क्षुप होता है जो सभी स्थानों में प्रायः आर्द्र एवं क्षारीय भूमि में होता है। इस जड़ी से सदा पानी टपकता रहता है इसलिये यहां की भूमि आर्द्र रहती है। यह उष्ण, कटु, तिक्त एवं क्षयकृमिनाशक, रक्तपित्तघ्न, रसायन एवं कफ, श्वास तथा प्रमेह की नाशक है (रा. नि.)।



९५. हिं०–रुद्राक्ष। अं०–Utrasum Bead Tree. ले०–Elaeocarpus ganitrus Roxb. (Fam. Elaeocarpaceae)

इसके मध्यम आकार के वृक्ष नेपाल, बिहार, बंगाल, आसाम, मध्यप्रदेश, बंबई एवं कभी-कभी बागों में लगाये मिलते हैं। इसके पत्ते ३–६ इञ्च लंबे, अण्डाकार प्रासवत् या आयताकार, पुष्प श्वेत, फल गोल, नीले, ½–१ इंच व्यास के एवं गुठली ४–५ खड़ी नालियों से युक्त एवं पृष्ठ पर दानेदार होती है जिसके अन्दर बीज तथा कोश ४–५ होते हैं। इन गुठलियों को साफकर, पालिशकर इनकी माला बनाते हैं। बड़े आकार के तथा नालियों की कमी या अधिकता से इनका मूल्य बढ़ जाता है। इसका गूदा खट्टा होता है तथा इसे अपस्मार में लाभदायक माना जाता है।

९६ हिं०–रूमी मस्तगी। ले०–Pistacia lentiscus Linn. (Fam. Anacardiaceae).

यह भूमध्यसागरीय गुल्म का निर्यास है। यह छोटे, ४–८ मि० मी० बड़े, गोल, कुछ चिपटे, पीताभ श्वेत दानों के रूप में बजार में बिकती है। नवीन होने पर यह वर्ण हीन होती है किन्तु हाथ आदि के स्पर्श से श्वेत चूर्णावृत मालूम होती है। इसमें हलकी गंध तथा इसका स्वाद कुछ मधुर होता है। तोड़ने पर कणों में टूटती है तथा बाद में चिपचिपी हो जाती है। इसकी अन्य जातियों से भी मस्तगी मिलती है जो गहरे रंग की, कम चमकीली, सुरासार में कम घुलनशील किन्तु ताड़पीन के तेल में अधिक घुलनशील होती है। यह कफघ्न, मूत्रजनन, शोथघ्न, वर्ण्य, मुख-दुर्गन्धनाशक एवं दन्तदार्ढ्यकृत है। खांसी, मन्दाग्नि तथा रक्तस्राव में इसका आन्तरिक प्रयोग करते हैं। दांतों के गड्ढों को भरने के लिये, गोलियों पर आवरण के लिये तथा वार्निश के काम में भी यह आती है।

९७ हिं०–रेगमाही, रेत की मछली। अं०–The Common Indian Shink, Sand Lizard. ले०–Mabuya carinata (Schneider).

यह एक प्रकार की गिरगिट या छिपकली होती है। इसके हाथ पैर काटकर, पेट से अन्त्रादि निकाल कर नमक भरकर सुखा लेते हैं। यूनानी चिकित्सा में इसको परमोत्तम वाजीकर रूप में प्रयोग करते हैं।

९८ हिं०–रोजमरी। अ०–इकलील् उल् जबल। अं०–Rosmary. ले०–Rosmarinus officinalis Linn. (Fam. Labiatae).

यह सुगंधि पौधा युरोप, एशिया माइनर तथा उत्तर अफ्रीका का आदिवासी है। भारतवर्ष में यह बागों में लगाया हुआ पाया जाता है। इसके पुष्पित शाखाओं से एक सुगन्धि तेल प्राप्त किया जाता है जिसका प्रयोग बाह्यरूप में इन्द्रलुप्त में किया

जाता है जिससे केशों की वृद्धि अच्छी होती है। इसको अधिक लगाने से छाले भी पड़ सकते हैं।

९९ हिं०–लाइकोपोडियम। अं०–Lycopodium Spores; Vegetable Sulphur. ले०–Lycopodium clavatum Linn. ( Fam. Lycopodiaceae ).

क्षुद्रजाति के ये प्रसरणशील पौधे सिक्किम हिमालय तथा खासिया पर्वतों पर पाये जाते हैं। इनके बीजाणुओं का उपयोग गोली बनाने के लिये सहायक द्रव्य के रूप में किया जाता है जिससे गोलियाँ आपस में न चिपकें। इसी प्रकार गले, नाक, कान आदि में प्रयुक्त प्रधमन चूर्णों में भी औषध की मात्रा बढ़ाने के लिये इसका उपयोग करते हैं। अत्यन्तसूक्ष्म किन्तु एक समान आकार तथा नाप के होने के कारण इनका उपयोग इयत्तात्मक सूक्ष्मदर्शिकी ( Quantitative microscopy) में किया जाता है। यह बीजाणु हलके पीले, अत्यन्त सूक्ष्म मुलायम चूर्ण के रूप में प्राप्त होते हैं जो जल पर डालने पर बिना भीगे हुवे फैल जाते हैं। ज्वाला में यह चमक के साथ जलते हैं। यह गंध एवं स्वादहीन होते हैं।

१०० हिं०–सकमुनिया। अं०–Scammony Gum-resin. ले०–Convolvulus scammonia Linn. ( Fam. Convolvulaceae ).

इस भूमध्यसागरीय लता को अपने यहां भी लगाने का प्रयत्न किया गया है। इसकी जड़ को काटकर एक रालीय पदार्थ प्राप्त किया जाता है जिसे सकमुनिया कहते हैं। आजकल इस पौधे से यह कम निकाला जाता है। ज्यादातर अब जिससे यह प्राप्त करते हैं उसका पौधा ओरिज़ाबा ( मेक्सिकन एण्डीज ) में होता है। यह ले०–Ipomoea orizabensis (Pellet.) Ledanois ( Fam. Convolvulaceae) है। इसकी जड़ से उपर्युक्त राल प्राप्त की जाती है। यह हलका बादामी चूर्ण-रूप में या पारभासक बादामी भंगुर टुकड़ों में होता है जिसमें विशिष्ट गंध तथा कुछ तीता स्वाद होता है। बंबई में यह सीरिया तथा एशिया माइनर से आयात होता है जहां इसमें मिलावट की जाती है। त्रिवृत के सदृश इसका उपयोग जलविरेचक के रूप में जलोदर तथा सर्वाङ्गशोथ आदि में करते हैं।

१०१ हिं०–समुद्रशोष, समुन्दरसोख, कम्मरकस। ले०–Salvia plebeia R. Br. ( Fam. Labiatae ).

इसके सीधे, चौपहल अनेक काण्ड वाले एवं १–२ फीट ऊंचे क्षुप सभी भागों में प्रायः नदी नालों के समीप कंकरीली भूमि में पाये जाते हैं। इसके पत्ते लट्वाकार-आयताकार या लट्वाकार-प्रासवत्, गोलदन्तुर, १–३ इञ्च लंबे एवं तल में झुर्रीदार होते हैं। श्वेत वर्ण के पुष्प मंजरी में आते हैं। इसके बीजों को जल में भिगोने पर बहुत लुआब निकलता है और वे परस्पर चिपक जाते हैं। इसके बीज



उष्ण, स्नेहन, तथा पौष्टिक होते हैं। इनका उपयोग वीर्य स्तम्भन के लिये किया जाता है।

१०२ हिं०– साबूदाना। अं०–Sago.

साबूदाना यह एक प्रकार के स्टार्च से बनाया पदार्थ है। ले०–Metroxylon sagu Rottb. एवं M. rumphii Mart. ( Fam. Palmae ). नामक ताड़ की जाति के वृक्ष जो मलाया, इन्डोनेशिया, फिलिपाइन में होते हैं उनसे वास्तविक साबूदाना बनाया जाता है। इसके स्टार्च को अलग करके चलनी द्वारा इसके दाने बनाते हैं तथा बाद में उनको भूनते हैं। इसके वृक्ष अपने यहां कहीं कहीं बागों में लगाये मिलते हैं।

आजकल भारत में जिस साबूदाने का व्यवहार हो रहा है वह ले०–Manihot esculenta Crantz ( Fam. Euphorbiaceae ); अं०–Cassava; Tapioca, के कन्दों से प्राप्त स्टार्च से बनाया जाता है। इस द० अमेरिका के झाड़ीदार पौधे की खेती केरल, मद्रास तथा दक्षिण के अन्य भागों में की जाती है जिसके कृषिजन्य अनेक भेदोपभेद होते हैं। इसमें जो मीठे कंद होते हैं उनको सकरकन्द की तरह खाते हैं। कन्दों को काटकर रखने से यह खराब नहीं होते। इसके आटे इत्यादि का उपयोग भी किया जाता है। इसके कन्दों से स्टार्च को अलग कर बाद में साफ करते हैं। इसके कण, ५–१५–३५ माइक्रोन नाप के होते हैं। साबूदाना, धोये हुये स्टार्च को धूप में सुखा, कपड़े की थैलियों या यंत्रों से दानेदार बना, पात्रों में १०-१५ मिनिट गरम करके बाद में गरम हवा से सुखाकर तैयार करते हैं। आकार, रंग तथा गरम करने की तीव्रता के अनुसार इसके कई प्रकार होते हैं। साबूदाने का उपयोग बच्चों तथा रोगियों के लिये सुपाच्य खाद्य की दृष्टि से किया जाता है।

इसके अतिरिक्त आलू या अन्य द्रव्यों से प्राप्त स्टार्च से भी साबूदाना बनाया जा सकता है।

१०३ हिं०–सिकोना। ले०–Cinchona sp. ( Fam. Rubiaceae ).

इसके विभिन्न जातियों की खेती बंगाल तथा मद्रास में होती है। यह दक्षिण अमेरिका का आदिवासी वृक्ष है। पाश्चात्य चिकित्सा में इसकी छाल का मलेरिया में उपयोग किया जाता था। आजकल इसके सत्त्व क्विनीन का अधिक उपयोग करते हैं। मलेरिया के अतिरिक्त इसका दीपन एवं तिक्त पौष्टिक रूप में उपयोग किया जाता है।

१०४ सं०–सीताफल, गण्डगात्र, कृष्णबीज। हिं०–शरीफा। अं०–Custard Apple. ले०–Annona squamosa Linn. (Fam. Annonaceae).

इसके छोटे वृक्ष जंगली तथा लगाये हुये मिलते हैं। इसके फल ३-४ इञ्च व्यास के, पीताभ हरे, मज्जा पीताभ श्वेत, स्वादिष्ट एवं बीज भुरापन युक्त काले होते हैं। यह

शीत, मधुर, बल्य, बृंहण एवं तृप्तिजनन है। दाह एवं रक्तपित्त में इसे देते हैं। इसकी जड़ विरेचक होती है। इसके बीज एवं पत्र पीस कर जूँ मारने के लिये लगाते हैं किन्तु यह आंखों के लिये प्रक्षोभक होते हैं। इसलिये आंख में न जाय इसकी सावधानी रखनी चाहिये। इसके बीज गर्भपातक होते हैं। पत्तों का लेप फोड़ों पर लगाते हैं।

१०५ हिं०-सुद्दाब, सिताब। अं०-Garden Rue. ले०-Ruta graveolens Linn. ( Fam. Rutaceae ).

इसके पौधे बगीचों में लगाये पाये जाते हैं जिनमें एक तीक्ष्ण गंध होती है तथा स्वाद कडुवा होता है। इसका क्षुप तथा तेल उपयोग में आता है। इसमें 'तितली' ( पृष्ठ ३१२ ) की मिलावट की जाती है। यह उत्तेजक, प्रतिक्षोभक, आर्तवजनन एवं उद्वेष्टन निरोधी है। इसका मुख्य प्रभाव गर्भाशय तथा वातनाड़ीसंस्थान पर पड़ता है। इसका उपयोग आर्तव विकार, आमवात, अपतंत्रक, शूल, आनाह तथा प्रतिश्याय में करते हैं।

१०६ अ०-सुरंजाने तल्ख। हिं०-सुरंजान कड़वा। ले०-Colchicum luteum Baker ( Fam. Liliaceae ).

इसके पौधे पश्चिम हिमालय में प्राप्त होते हैं। इसके कंद तथा बीजों का उपयोग किया जाता है। विदेशी द्रव्य जो C. autumnale Linn.से प्राप्त होता है उसका यह अच्छा प्रतिनिधि है। इसका एक मीठा भेद भी बिकता है जिसे सुरंजाने शीरी कहते हैं किन्तु इसमें ये गुण नहीं होते। कड़वे सुरंजान का कंद छोटा, कड़वा, गंधहीन, कुछ शंक्वाकार या चौड़ाई लिये अंडाकार, एक तरफ से उन्नतोदर, भूरापन लिये धूसरवर्ण का एवं पारभासक या अपारदर्शक होता है। इसकी चिपटी सतह पर लंबाई में एक नाली होती है। बाह्य पृष्ठ पर लंबाई में अनियमित धारियां पाई जाती हैं। ताजे कंद १५-३५ मि. मी. लंबे तथा १०-२० मि. मी. व्यास में होते हैं। सूखा कंद आसानी से टूटता है तथा अंदर से श्वेत तथा पिष्टमय दिखलाई देता है।

इसमें एक क्षाराभ Colchicine, ०·२१ से ०·२५ प्रतिशत तथा स्टार्च रहता है। इसके क्षाराभ तथा कंद का प्रयोग वातरक्त ( Gout ) में किया जाता है। अधिक मात्रा से आंत्रशूल, अतिसार तथा वमन होता है।

१०७ सं०-सूची। अ०-लुफ्फाह। अं०-इंडियन बेलाडोना। ले०-Atropa acuminata Royle ex Lindley ( Fam. Solanaceae ).

इसके पौधे हिमालय में ६ से १२ हजार फीट तक पाये जाते हैं। इसके मूल, पत्र तथा सत्व का पाश्चात्य चिकित्सा में स्थानिक स्वापजनन एवं वेदनाहर तथा शामक, उद्वेष्टनरोधी एवं कनीनिका विकासी द्रव्य के रूप में बहुत प्रयोग होता है। इसका विदेशी भेद A. belladona Linn.; सं०-लक्ष्मणा ?, जिसकी विदेशों में व्यापक खेती होती है अपने यहां सफलतापूर्वक उपजाया गया है। अफीम की विषाक्तता में भी इसे देते हैं। यह अत्यन्त तीव्र औषध है और अधिक मात्रा से विषपरिणाम जैसे मुख, गला तथा चर्म में शुष्कता, कनीनिका विकास एवं चक्कर आते हैं। इसकी चिकित्सा के लिए वमन आदि सामान्य विषचिकित्सा के साथ अल्प मात्रा में मारफीन का प्रयोग किया जाता है।



१०८ हिं०-स्ट्रोफैन्थस। ले०-Strophanthus kombe Oliv. ( Fam. Apocynaceae ).

इसकी आरोही लता अफ्रीका में होती है। विषाक्त बाण बनाने के लिये इसका आदिवासी उपयोग करते हैं। प्रत्येक फूल से दो फलियां निकलती हैं जिनमें छोटे-छोटे बीज होते हैं। बीज भालाकार, भालाकार-रेखाकार, कुछ चिपटे, १२-१८ मि. मी. लंबे, ३-५ मि. मी. चौड़े, ०.५-२ मि. मी. मोटे एवं धूसराभ हरे रोम से आवृत होते हैं। इनके अग्र पर लंबे शूक पर रोमों का एक गुच्छ रहता है जिन्हें निकाल दिया जाता है। इनमें हलकी गंध होती है तथा इनका स्वाद अत्यंत कड़वा होता है। यद्यपि यह जाति अपने यहां नहीं होती तथापि इसके अन्य भेद पाये जाते हैं जिनका अभी पर्याप्त संशोधन होना बाकी है। इनसे प्राप्त ग्लाइकोसाइड का उपयोग डिजिटेलिस की तरह हृदयरोगों में किया जाता है।

१०९ हिं०-हजरतबेर, बेरपत्थर। अ०-हज्रुल् यहूद। अं०-Fossil Encrinite.

यह एक प्रकार का अश्मीभूत पदार्थ है जो आकार में बेर की तरह होता है तथा इसका रंग मटियाला भूरा होता है। इसपर आड़ी झुर्रियां पड़ी रहती हैं तथा अन्दर से यह हरापन लिये श्वेत होता है। इसको जल में घिसकर अश्मरी में देते हैं।

११० हिं०-हत्थाजोड़ी। ले०-Selaginella species ( Fam. Selaginellaceae ).

यह क्षुद्र वनस्पति पथरीली, सूखी और खुली जगहों में पाई जाती है। सुबह यह ताजी हरी एवं जमीन पर फैली रहती है किन्तु दिन चढ़ने पर क्रमशः संकुचित होते हुये देखने में बिलकुल शुष्क एवं कड़ी मालूम होती है। यदि इसे उखाड़कर जल में डाल दें तो शीघ्र फैलकर हरी ताजी मालूम होने लगती है। संभवतः इसके इसी वैशिष्ट्य के कारण इसका अनेक रोगों में उपयोग बतलाया जाता है। वातविकार, अपस्मार, सूखारोग, आर्तव विकार, रक्तपित्त, धातुदौर्बल्य तथा प्रसूति रोग में इसको उपयोगी बतलाया जाता है।

१११ हि०–हरमल, इस्पंद। ले०–Peganum harmala Linn. (Fam. Rutaceae).

इसके ३० से ९० से० मी० ऊँचे बहुवर्षायु पौधे प्रायः सभी स्थानों पर पाये जाते हैं। इसके बीजों का उपयोग किया जाता है। बीज मटमैले हलके भूरे रंग के, विभिन्न आकार के किन्तु कोणयुक्त, २·५–४ मि० मी० लंबे, १·५–३ मि० मी० चौड़े तथा इनका बाह्यस्तर जालीदार होता है। ये स्वाद में कड़वे तथा इनकी गंध अरुचिकर होती है। बीज स्वापक, कृमिघ्न, उद्वेष्टननिरोधी, वेदनाहर, हृल्लासकर, वामक, वाजीकर एवं आर्तवप्रवर्तक होते हैं। इनका श्वास, कास, हिचकी, अपतंत्रक, शूल, कष्टार्तव तथा ज्वर में उपयोग करते हैं।

मात्रा—२ से ४ माशा।



# परिशिष्ट २

## भावप्रकाश निघण्टुस्थ शब्दानांवर्णानुक्रमणिका

द

शा

—◆—

# वर्णानुक्रम से द्रव्यों के विभिन्न भाषाओं के नाम

ग

### भ

## Index of Latin and English Names.

C

**N**



**O**







**P**